फिर अमरित की बूंद पड़ी

प्रवचन-क्रम

1. ध्यान प्रक्रिया है रूपांतरण की..2
2. एक नया ध्रुवतारा...12
3. मेरी दृष्टि सृजनात्मक है...25
4. मैं तुम्हें इक्कीसवीं सदी में ले जा सकता हूं.............................36
5. भारतः एक सनातन यात्रा..48

फिर अमरित की बूंद पड़ी
पहला प्रवचन

ध्यान प्रक्रिया है रूपांतरण की

प्रश्नः ओशो, भारत में जनसंख्या के कारण गरीबी बढ़ती जा रही है और गरीबी के कारण जनसंख्या। यानी दोनों एक-दूसरे से बढ़ कर! मौजूदा हालात में जनसंख्या को कंट्रोल में कैसे लाया जाए, जब कि परिवार-नियोजन को यहां स्वैच्छिक रूप से ही अपनाया जाता है? कृपया अपनी ओर से कुछ सुझाव दें।

यह इतनी बड़ी समस्या नहीं है, जितनी दिखाई पड़ती है। जनसंख्या अपने आप नहीं बढ़ती है, हम बढ़ाते हैं और गरीबी उसका स्वाभाविक परिणाम होता है। पहली बात, जो भारत की चेतना में प्रविष्ट हो जानी चाहिए, वह यह है कि जनसंख्या बढ़ती नहीं है, हम बढ़ाते हैं। गरीबी बढ़ती नहीं, हमारी सृष्टि है। और हमने सदियों तक गलत विचारों के अंतर्गत जीना सीखा है। जैसे, हमें बताया गया है कि बच्चे भगवान की देन हैं। यह भी समझाया गया है कि बच्चे प्रत्येक के भाग्य में लिखे हैं। और धर्मगुरु यह भी समझा रहे हैं सदियों से कि बच्चों को रोकना, पैदा होने से, ईश्वर का विरोध है। इन सब बातों का एक ही अर्थ होता है कि जैसे ईश्वर का एक ही काम है, और वह है कि लोग कैसे ज्यादा से ज्यादा गरीब हों। जो कि ईश्वर शब्द के बिल्कुल विपरीत है। ईश्वर शब्द का मूल उदगम ही ऐश्वर्य है। ऐश्वर्य से ही ईश्वर शब्द बना है। तो ऐश्वर्य से गरीबी बढ़ती हो, ईश्वर गरीबी बढ़ाता हो, ये बातें सिर्फ पंडितों, पुरोहितों, धर्मगुरुओं, राजनीतिज्ञों--उन सारे लोगों की गढ़ी हुई बातें हैं, जो गरीबों के शोषण पर ही जी रहे हैं।
जब तक भारत के मानस से हम यह पर्दा नहीं हटा देते हैं कि परमात्मा का तुम्हारी गरीबी में कोई हाथ नहीं है... । और परमात्मा ही क्या जो तुम्हें गरीब बनाना चाहे! लेकिन, धर्मगुरु, जैसे जीसस चिल्ला-चिल्ला कर लोगों से कह रहे हैं कि धन्यभागी हैं वे जो गरीब हैं। इससे गरीब को थोड़ी देर के लिए सांत्वना तो मिल जाती है, जैसे चिंताओं में डूबे हुए आदमी को अफीम खा लेने से थोड़ी देर को राहत मिल जाती हो, लेकिन गरीबी नहीं मिटती, और न ही चिंताएं मिटती हैं। और अगर गरीबी धन्यता है, तब तो फिर गरीबी को वरण करना चाहिए, विनष्ट करने का तो सवाल ही कहां उठता है? जो गरीब नहीं हैं, उनको भी गरीब बना देना चाहिए, क्योंकि वे बेचारे क्यों धन्यता से अभागे रहें।
महात्मा गांधी गरीबों को कहते हैं दरिद्र नारायण, ये परमात्मा के रूप हैं, ईश्वर की संतान हैं। इन सारी बातों से गरीबों को थोड़ी देर के लिए राहत तो मिलती है, मगर उनके जीवन की असली समस्या का कोई हल नहीं होता। और ये राहत देने वाले, असली समस्या के हल होने में बाधा बनते हैं।
मैं चाहूंगा कि गरीबों से उनकी सारी राहत छीन ली जाए, उनकी सारी सांत्वनाएं छीन ली जाएं, उनसे सारे धोखे और सारे भ्रम छीन लिए जाएं और उनको स्पष्ट कह दिया जाए कि यदि गरीब हो तुम, तो तुम जिम्मेवार हो। और अगर जनसंख्या बढ़ती है, तो "तुम" बढ़ाते हो। और अगर यही तुम्हारी मर्जी है, कि गरीब रहना है, और देश को और से और गरीबी की तरफ ले जाना है... और इस सदी के पूरे होते-होते सौ करोड़ संख्या होगी भारत की। आधा भारत भूखा मरता होगा। अगर यही तुम्हारी मर्जी है कि तुम्हारे सामने ही आधा भारत सड़कों पर भूखा बिलखे और मरे, तो ठीक है, तुम अपने पुराने विचारों से चिपके रहो। लेकिन हम यह मानने को कभी राजी नहीं हो सकते कि यह ईश्वर की मर्जी हो सकती है। और अगर यह ईश्वर की मर्जी है तो ऐसे ईश्वर को इनकार कर देना जरूरी है।
इसके पहले कि हम भारत के लोगों को संतति-निरोध के साधनों के लिए राजी करें, उनकी मानसिक, दार्शनिक, धार्मिक धारणाओं को बदल देना जरूरी है। और तब कोई कठिनाई न होगी कि वे स्वेच्छा से संतति-निरोध के उपायों को स्वीकार करेंगे।
मैं एक ईसाई पादरी से बात कर रहा था। और पादरी ने कहा कि संतति-निरोध
के लिए किए गए कोई भी साधन, सब ईश्वर का विरोध है। मैंने उससे कहा, एक छोटी सी बात मैं आपसे पूछूं, कि आपकी ईश्वर की परिभाषा है कि वह सर्वशक्तिमान

है। एक छोटी सी गोली तुम्हारे सर्वशक्तिमान परमात्मा को हरा देती है। परमात्मा बच्चा पैदा करना चाहता है, और गोली परमात्मा को बच्चा पैदा करने से रोक देती है। तो बेहतर होगा कि तुम परमात्मा की पूजा छोड़ कर अब इस गोली की पूजा शुरू करो। यह ज्यादा शक्तिमान है।
यह मूर्खतापूर्ण है कि परमात्मा सर्वशक्तिमान है और फिर भी हमसे कहा जाता है कि हम उसकी इच्छा का विरोध न करें। एक तरफ हमसे कहा जाता है कि उसकी इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिलता, और दूसरी तरफ हमसे कहा जाता है कि हम उसकी इच्छा का विरोध न करें। इन दोनों बातों में विरोधाभास है। अगर उसकी इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिलता तो हम लाख उपाय करें, अगर वह बच्चा देना ही चाहता है तो बच्चा देगा। हमारे उपाय किसी काम में आने के नहीं हैं। और अगर हमारे उपाय काम में आते हैं, तो उसका अर्थ है कि बच्चा परमात्मा नहीं दे रहा था। बच्चा हम पैदा कर रहे थे, और जिम्मेवारी हम परमात्मा पर थोप रहे थे, और जब तक हम जिम्मेवारी दूसरों पर थोपते हैं, तब तक हम जीवन में कोई क्रांति नहीं ला सकते। जिम्मेवारी खुद लेनी होगी। जैसे ही भारतीय मानस शिक्षित किया जा सके, और जो कि कठिन नहीं है, क्योंकि मेरे देखे भारत के लोग भला अशिक्षित हों, बुद्धिहीन नहीं हैं। भले ही आधुनिक जगत से दूर हों, लेकिन इतनी प्रतिभा उनमें है, कि वे ब्रह्म और ईश्वर, स्वर्ग और नरक, और मोक्ष की सूक्ष्मतम व्याख्या कर सकते हैं, समझ सकते हैं, तो इन छोटी-छोटी बातों को न समझ सकेंगे, ऐसा मैं नहीं मानता। मैं परिपूर्ण आशावादी हूं। जरूरत है केवल इस बात की कि हम गांव-गांव में... कालेज हैं, युनिवर्सिटीज हैं, स्कूल हैं, इनके शिक्षक हैं, प्रोफेसर हैं, विद्यार्थी हैं, हम इसे एक जरूरत बना दें कि जब तक कोई विद्यार्थी दो महीने तक गांव में जाकर लोगों को संतति-नियमन के संबंध में नहीं समझाएगा, वह सर्टिफिकेट पाने का अधिकारी नहीं होगा। और हर शिक्षक, दो महीने गर्मियों में जब तक गांव में जाकर लोगों को नहीं समझाएगा, तब तक वह आगे के किसी प्रमोशन का हकदार नहीं होगा। हिंदुस्तान में इतने शिक्षक हैं, इतने विद्यार्थी हैं, और बहुत से लोग जो शिक्षक और विद्यार्थी नहीं हैं, लेकिन चाहते हैं कि भारत की कोई सहायता करें, कोई सेवा करें, उनसे आग्रह किया जाना चाहिए कि वे गांव-गांव जाएं और लोगों को समझाएं कि इसमें ईश्वर का विरोध नहीं है। यह एक पहलू हुआ।
और दूसरा पहलू है, भारत की सरकार को निश्चित रूप से उन लोगों को अपराधी घोषित करना चाहिए जो भारत की जनता को गुमराह कर रहे हैं। ईसाई मिशनरी हैं, मदर टेरेसा है। अभी पोप का आगमन होने को है। इसके पहले भारत को यह तय करना चाहिए कि ये लोग हैं, जो जनता को समझा रहे हैं, किसी भी तरह के संतति-नियमन का उपयोग महा-अधर्म है, महापाप है। यह उनकी राजनीति है, कोई धर्म नहीं है। क्योंकि मदर टेरेसा को जितने अनाथ बच्चे मिल जाते हैं, उतनी कैथलिकों की संख्या बढ़ जाती है। और हम ऐसे मूढ़ हैं कि हम मदर टेरेसा जैसी औरतों को पुरस्कार पर पुरस्कार दिए चले जाते हैं, बिना यह देखे कि गरीबों की सेवा के नाम के पीछे, अनाथों के नाम की सेवा के पीछे सिवाय ईसाइयत के प्रसार के और कुछ भी नहीं है।
पूरे हिंदुस्तान में मैंने एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं देखा जो सुसंस्कृत हो, सुसंपन्न हो और ईसाई बन गया हो। जो भी ईसाई बने हैं, वे भिखारी हैं, अनाथ हैं, आदिवासी हैं। और वे ईसाई इसलिए नहीं बने हैं कि वे समझ गए हैं कि ईसाइयत उनके धर्म से श्रेष्ठतर धर्म है, बल्कि इसलिए कि ईसाइयत उनको रोटी दे रही है, कपड़े दे रही है, अस्पताल दे रही है, स्कूल दे रही है।
जो भी व्यक्ति भारत में संतति-नियमन का विरोध सिखाता है, उसे दंडित किया जाना चाहिए।
इस समय सबसे बड़ा अपराध वही है। एक आदमी को मार डालने के लिए तो हम कितनी बड़ी सजा देते हैं कि उसकी जान ले लेते हैं अपराधी की, और जो लोग आज समझा रहे हैं कि जनसंख्या को बढ़ने दो, ये करोड़ों लोगों की हत्या के लिए जिम्मेवार होंगे, और इनके लिए हमारे पास कोई अपराध का नियम नहीं है। उलटे हम इन्हें नई-नई पदवियों, डाक्टरेट, और नोबल प्राइज से पुरस्कृत करते हैं। यह दोहरी चाल बंद करनी होगी। स्पष्ट रूप से प्रत्येक ईसाई मिशनरी को यह समझ लेना चाहिए कि अगर इस देश में रहना है तो इस तरह की मूर्खतापूर्ण

बातें नहीं चलेंगी। अन्यथा इसी क्षण इस देश को छोड़ कर चले जाओ। जाओ और अपने देशों में समझाओ।
यह बड़े मजे की बात है कि फ्रांस की जनसंख्या थिर है, और सब ईसाई हैं! यह मजे की बात है कि स्विटजरलैंड से और फ्रांस से मिशनरी भारत आते हैं। और यहां लोगों को समझा रहे हैं कि जनसंख्या को बढ़ने दो, क्योंकि यह ईश्वर की देन है। और उनके साथ ही साथ सुर मिलाने को शंकराचार्य हैं, मुस्लिम इमाम हैं, क्योंकि उन सबको यह भ्रांति है कि बच्चे के जन्म का कोई अनिवार्य संबंध ईश्वर से है। कोई अनिवार्य संबंध ईश्वर से नहीं है। एक बार हम भारत के मन से यह भ्रम तोड़ दें कि ईश्वर का कोई संबंध संतति से नहीं है तो भारत के लोगों को स्वेच्छा से संतति-निरोध को अपना लेने में कोई बाधा नहीं होगी।
साथ-साथ मैं यह भी कह देना चाहता हूं कि अब तक हमने एक ही किनारे से सोचा है, वह है जन्म। अभी हमने दूसरा किनारा नहीं सोचा है, वह है मृत्यु। यह अधूरा चिंतन है। मैं इसे पूरा करना चाहता हूं। संतति-निरोध का प्रचार करो। लोगों को समझाओ कि अब बच्चों को पैदा करने से बड़ा कोई और दूसरा अपराध नहीं है। और यह अपराध तुम अपने बच्चों के प्रति ही कर रहे हो, तुम्हारे बच्चे ही भूखे मरेंगे, तुम्हारे बच्चे ही सड़कों पर तड़फेंगे। तुम्हारे बच्चे ही इसी पृथ्वी पर नरक झेलेंगे और तुम जिम्मेवार होओगे। तुम चाहते तो यह सब रोक सकते थे। यह एक हिस्सा है।
दूसरा हिस्सा है कि पचहत्तर साल के बाद अगर कोई भी व्यक्ति स्वेच्छा
से मृत्यु को ग्रहण करना चाहता है, तो हमें इसे कानूनन रूप से अंगीकार करना चाहिए। प्रत्येक अस्पताल में एक निश्चित मंदिर जैसी जगह होनी चाहिए। जहां कोई भी व्यक्ति जो पचहत्तर के पार हो चुका है, और चाहता है कि पूरी तरह जी चुका, जो भी जानना था, जान चुका, जो भी पाना था, पा चुका; और अब सिर्फ एक बोझ है, और चाहता है कि अपनी जगह अब किसी नये बच्चे को दे दे, और किसी क्रोध से आत्महत्या नहीं कर रहा है, किसी हार से, किसी पराजय से आत्महत्या नहीं कर रहा है, वरन चिंतन से, सोच-विचार से, तो अस्पताल में हमें उसे सारी सुविधा देनी चाहिए, जो उसे जीवन में भी नहीं मिली। उसे श्रेष्ठतम अवसर देना चाहिए, कि सुंदरतम संगीत सुन सके, अपने मित्रों, प्रियजनों से मिल सके, और हम उसे दवा दे सकें कि वह धीरे-धीरे नींद की गहराइयों में डूबता हुआ मृत्यु में उतर जाए, इसके साथ ही ध्यान जैसी प्रक्रिया जोड़ी जा सकती है कि उसका मरण सिर्फ मृत्यु ही न हो, बल्कि समाधि भी बन जाए।
तो एक तरफ हम बच्चों को आने से रोकें और दूसरी तरफ उनको, जो कि अब जबरदस्ती अपने को घसीटे जा रहे हैं, क्योंकि कानून रूप से जीना मजबूरी है, जीना ही पड़ेगा। अपने जीवन को छोड़ देने का जन्मसिद्ध अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को मिल जाना चाहिए। इन दोनों छोरों से अगर हम काटना शुरू करें, तो संभव है कि इस सदी के अंत तक हमारी संख्या संतुलित हो जाए। और संख्या संतुलित हो जाए तो दरिद्रता के मिट जाने में कोई कठिनाई नहीं है।

प्रश्नः ओशो, जुलाई में जब मैं रजनीशपुरम गई थी, तब आपने अपने प्रवचनों में कहा था, भारत में कई सालों तक बच्चा पैदा नहीं होना चाहिए। यही बातें हिंदुस्तान आकर मैंने कई लोगों से कहीं। अलग-अलग लोगों की अलग-अलग प्रतिक्रियाएं थीं, मगर ज्यादातर महिलाओं ने कहा, स्त्री में जो मातृत्व की भावना होती है, उसे वह कैसे सैटिस्फाई करे? कइयों ने कहा, नारी पूर्णता को प्राप्त नहीं करती, जब तक वह मां नहीं बनती। इस बारे में कुछ कहिए, ओशो।

पहली बात, हिंदुस्तान में कितनी नारियां पूर्णता को प्राप्त हो गई हैं? हर नारी एक नहीं दर्जन और डेढ़ दर्जन बच्चों की मां है--पूर्णता कहां है? ये बच्चे उसके पूरे जीवन को खा गए। पूर्णता का तो कोई पता नहीं चलता। दूसरी बात, कि स्त्री मां बनने से ही मातृत्व को पाती है, यह भी सही नहीं है। क्योंकि लगभग सारी स्त्रियां बच्चे पैदा करती हैं, मां बनती हैं, पर मातृत्व की कोई गरिमा, कोई ओज, कोई तेज दिखाई तो नहीं देता। इसलिए मेरी

परिभाषा दूसरी है। मेरी परिभाषा में मां बन जाना जरूरी नहीं है, मातृत्व को उपलब्ध होने के लिए।
मां तो सारे जानवर अपनी मादाओं को बना देते हैं। सारी प्रकृति, जहां- जहां मादा है, वहां-वहां मां है। लेकिन मातृत्व कहां है? इसलिए मातृत्व को और मां को एकार्थी न समझें। यह हो सकता है कि कोई मां न हो और मातृत्व को उपलब्ध हो, और कोई मां हो और मातृत्व को न उपलब्ध हो।
मातृत्व कुछ बात ही और है। वह प्रेम की गरिमा है।
मैं चाहूंगा कि स्त्रियां मातृत्व को उपलब्ध हों, लेकिन उस उपलब्धि
के लिए बच्चे पैदा करना बिल्कुल गैर-जरूरी हिस्सा है। हां, उस मातृत्व को पाने के लिए हर बच्चे को अपने बच्चे जैसा देखना, निश्चित अनिवार्य जरूरत है। उस मातृत्व के लिए ईर्ष्या, द्वेष, जलन इनका छोड़ना जरूरी है। बच्चों की दर्जन इकट्ठी करनी नहीं!
और फिर हमारे देश में जहां इतने बच्चे बिना माताओं के हों, वहां जो स्त्री, अपना बच्चा पैदा करना चाहती हो, वह मातृत्व को कभी उपलब्ध नहीं होगी। जहां इतने बच्चे बिलख रहे हैं, अनाथ, मां की तलाश में, वहां तुम्हें सिर्फ इस बात की फिकर पड़ी हो कि बच्चा तुम्हारे शरीर से पैदा होना चाहिए। उस क्षुद्र विचार को पकड़ कर कोई मातृत्व जैसे महान विचार को नहीं पा सकता है। जहां इतने बच्चे बिलखते हों अनाथ, कोई जरूरत नहीं है बच्चा पैदा करने की। इन अनाथ बच्चों को अपना लो। इनके अपनाने में, इनको अपना बनाने में, वह जो दूरी अपने और पराए की है, वह गिर जाएगी। इनको अपना बनाने में, वह जो ईर्ष्या और जलन और द्वेष की क्षुद्र भावनाएं हैं, वे गिर जाएंगी। और इनको बड़ा करने में और इनको पल्लवित और पुष्पित होते देखने में जो आनंद उपलब्ध होगा, वह आनंद अपने ही बच्चों को चोर बनते, बेईमान बनते, भीख मांगते, जेलों में सड़ते देख कर नहीं हो सकता।
मातृत्व का कोई संबंध जैविक शास्त्र से नहीं है। इसलिए कोई पशु मनुष्य को छोड़ कर मातृत्व को उपलब्ध नहीं हो सकता। मां तो बन सकती है हर मादा, लेकिन मातृत्व की संभावना केवल स्त्री को उपलब्ध है। और वह उपलब्धि चारों तरफ फैली हुई है।
तो पहली बात, कि मातृत्व का कोई संबंध शारीरिक, जैविक उत्पत्ति से नहीं है, वरन एक आध्यात्मिक प्रेम से है, एक भाव से है। जिस क्षण तुम किसी दूसरे को अपने जैसा अपना लो, जैसे तुमने उसे जन्म दिया हो। और फर्क क्या है? किसने उसे जन्म दिया, इससे कोई भी भेद नहीं पड़ता है।
तो मातृत्व के लिए तो बहुत संभावना है। इतने अनाथ बच्चों को अगर माताएं मिल जाएं तो जरूरत न हो मदर टेरेसा जैसे लोगों की, जो कि शोषण कर रहे हैं इन अनाथ बच्चों का। और ये अनाथ बच्चे कैथलिक परिवारों द्वारा गोद लिए जा रहे हैं। और हिंदुस्तान की स्त्रियां अपने ही बच्चों को पैदा करने में मातृत्व अनुभव कर रही हैं।
दूसरी बात, स्त्री की पूर्णता उसके मां बनने में है, यह सच है। इसलिए मैंने जब संन्यास देना शुरू किया, तो पुरुषों के लिए तो परंपरागत नाम था संन्यासी काः स्वामी। स्त्री के लिए कोई नाम न था। क्योंकि भारत में हजारों साल से स्त्री को इस तरह दबाया है, इस बुरी तरह मिटाया है, उसे कभी मौका भी नहीं दिया है कि वह संन्यास में दीक्षित हो सके। उसके लिए कोई नाम भी नहीं है। बहुत खोज कर मैंने "मां" का ही वह नाम स्वीकार किया, क्योंकि "मां" में ही उसकी पूर्णता है। लेकिन यह मां की पूर्णता इस बात का सबूत है कि तुम्हारा प्रेम इतना ऊंचा उठ जाए कि ये सारे जगत में तुम्हारे लिए सभी यूं हो जाएं, जैसे तुम्हारे बच्चे हैं--तुम्हारा पति भी। यही उपनिषद के ऋषियों का आशीर्वाद है। जब कभी कोई उपनिषद के ऋषियों के पास कोई जोड़ा आशीर्वाद के लिए जाता था, तो एक बहुत ही अनूठा आशीर्वाद, दुनिया के किसी शास्त्र में वैसा आशीर्वाद नहीं है। ऋषि आशीर्वाद देता है कि हे युवती, तू दस बच्चों की मां हो और अंततः तेरा पति तेरा ग्यारहवां बेटा हो। जब तक यह न हो जाए, तब तक तू समझना कि जीवन-यात्रा पूरी नहीं हुई है। और जिस दिन कोई स्त्री अपने पति को भी अपने बेटे की तरह मान सके, जान सके, जी सके, उस दिन उसके लिए सारे जगत में सिवाय बेटों के और कौन रह जाता है?

निश्चित ही मां, मातृत्व की पूर्णता, स्त्री का आत्यंतिक गौरव है! लेकिन बच्चों की कतार लगाने से नहीं, वरन अपने प्रेम को इतना ऊपर उठाने से है कि जहां से प्रत्येक व्यक्ति अपना बच्चा ही मालूम हो। ये धारणाएं लोगों तक पहुंचानी जरूरी हैं, क्योंकि वे गलत धारणाओं के नीचे बच्चे को पैदा किए चले जा रहे हैं। और ये लौट कर भी नहीं देखते कि उनकी धारणाओं के लिए कोई भी सबूत नहीं है। करोड़ों स्त्रियां हैं, बच्चों की कतारें हैं, कौन सा मातृत्व है? करोड़ों स्त्रियां हैं, कौन सी पूर्णता है?
मुझसे लोग पूछते हैं कि आप अपनी संन्यासिनियों को मा कहते हैं?
यह तो बड़ी हैरानी की बात है, क्योंकि न उनके बच्चे हैं, न उनकी शादी हुई। आप छोटी सी बच्ची को भी संन्यास देते हैं तो मा कहते हैं! उनके आश्चर्य को मैं समझ सकता हूं। क्योंकि मेरी दृष्टि में छोटी सी बच्ची भी बीज लिए हुए है, अंतिम रूप से, इस सारे जगत की मां बनने का। उसे मा कह कर पुकारना उसके बीज को पुकारना है। उसकी संभावना को ललकार देना है, उसको चुनौती देनी है। और जिस दिन किसी मां का प्यार सबके लिए समान और सबके लिए आत्मिक हो जाता है। जिसमें शरीर की कोई बास भी नहीं, जिसमें काम की कोई दूर की गंध भी नहीं, उस दिन स्त्री पूर्णता को उपलब्ध होती है।

प्रश्नः ओशो, गर्भ से पहले और गर्भकाल में यदि माता-पिता ध्यान करते हैं, तो बच्चे पर इसका क्या असर पड़ता है?

निश्चय ही बच्चे का जीवन जन्म के बाद शुरू नहीं होता; वह तो गर्भाधारण
के समय ही शुरू हो जाता है। उसका शरीर ही नहीं बनता मां के पेट में, उसका मन भी बनता है, उसका हृदय भी बनता है। मां अगर दुखी है, परेशान है, चिंतित है, तो ये घाव बच्चे पर छूट जाएंगे और ये घाव बहुत गहरे होंगे, जिनको वह जीवन भर धोकर भी न धो न सकेगा। मां अगर क्रोधित है, झगड़ालू है, हर छोटी-मोटी बात का बतंगड़ बना बैठती है, इस सबके परिणाम बच्चे पर होने वाले हैं। पिता का तो बहुत कम असर बच्चे पर होता है, न के बराबर। निन्यानबे प्रतिशत तो मां ही निर्माण करती है बच्चे का, इसलिए जिम्मेवारी उसकी ज्यादा है। पिता तो एक सामाजिक संस्था है।
एक जमाना था, पिता नहीं था, और एक जमाना फिर होगा, पिता नहीं होगा। लेकिन मां पहले भी थी, और मां बाद में भी होगी।
मां प्राकृतिक है, पिता सामाजिक है।
पिता एक संस्था है। उसका काम बहुत ही साधारण है जो कि एक इंजेक्शन से
भी किया जा सकता है। और इंजेक्शन से ही किया जाएगा भविष्य में। क्योंकि इंजेक्शन से ज्यादा बेहतर ढंग से किया जा सकता है।
एक संभोग में पुरुष करीब एक करोड़ जीवाणुओं को स्त्री-गर्भ की ओर छोड़ता है। जिनमें से एक इस दौड़ में मां के अंडे तक पहुंच पाता है। जो पहले पहुंच जाता है, वह प्रवेश कर जाता है। और अंडा बंद हो जाता है। बाकी जो एक करोड़ जीवाणु हैं, वे दो घंटे के भीतर मर जाते हैं। उनकी उम्र दो घंटे है। भयंकर दौड़ है, और लंबी दौड़ है। अगर अनुपात से हम देखें, अगर आदमी की ऊंचाई हम छह फुट मान लें, तो जीवाणु इतने छोटे हैं कि मां के गर्भ तक पहुंचने का मार्ग दो मील लंबा हो जाता है। इस दो मील लंबे मार्ग पर भयंकर प्रतिस्पर्धा है। इसे मैं राजनीति की शुरुआत कहता हूं। इसमें जो पहुंच जाते हैं, वे जरूरी रूप से श्रेष्ठ नहीं हैं।
संभव है, वे जो एक करोड़ पीछे छूट गए, उनमें कोई अलबर्ट आइंस्टीन हो, कोई रवींद्रनाथ टैगोर हो, कोई गौतम बुद्ध हो। कोई भी नहीं जानता कि कौन छूट गए। और जो पैदा हुआ है, वह आकस्मिक है। यह हो सकता है चूंकि वह आगे था, इसलिए पहुंच गया। यह हो सकता है कि वह ज्यादा शक्तिशाली था, इसलिए पहुंच गया। लेकिन ज्यादा शक्तिशाली होना, किसी को रवींद्रनाथ नहीं बनाता। रवींद्रनाथ खुद अपने मां-बाप के तेरहवें बेटे थे। यह संयोग की बात है कि इस लंबी दौड़ में रवींद्रनाथ पहुंच सके। अक्सर यह होता है कि रवींद्रनाथ जैसे लोग, या गौतम बुद्ध जैसे लोग, या अलबर्ट आइंस्टीन जैसे लोग, न तो बहुत दौड़ने में उत्सुक होंगे, न बहुत प्रतिस्पर्धा में उत्सुक होंगे। शायद मनुष्य का श्रेष्ठतम हिस्सा हम व्यर्थ ही खो रहे हैं--जो कि आसानी से चुना

जा सकता है। यह काम विज्ञान करने को है। एक करोड़ जीवाणुओं में से जब हम श्रेष्ठतम को चुन सकते हैं, तब क्यों नंबर दो और नंबर तीन के लोगों को जगह दी जाए।
इसलिए पिता का काम तो समाप्त होने के करीब है। लेकिन मां का काम अपरिहार्य है। गर्भाधान के समय...
और यही मेरी पूरी शिक्षा रही है, जिसको हर भांति से विकृत करके उपस्थित किया गया है। मेरी सारी शिक्षा यही रही है कि कामवासना मनुष्य के जीवन का प्रारंभ है, मनुष्य के जीवन का सब कुछ है। और कामवासना को दबाने की बजाय, उसे हम कैसे सुंदर, श्रेष्ठ और शिवत्व की ओर ले चलें, कैसे उसका रूपांतरण हो सके, इस संबंध में चिंतन होना चाहिए। दमन से तो केवल हम रुग्ण व्यक्ति पैदा करते हैं।
और ध्यान प्रक्रिया है व्यक्ति की कामवासना के परिवर्तन की।
अगर कामवासना के क्षणों में स्त्री और पुरुष दोनों ही शांत हैं, मौन हैं, एक-दूसरे में ऐसे लीन हैं कि जैसे कहीं कोई दीवार न हो--उस क्षण में समय जैसे रुक गया, जैसे दुनिया भूल गई, न कोई विचार है, न कोई धारणा है, बस एक आनंद है, एक ज्योति है, जिसमें दोनों डूब गए हैं। ऐसे ज्योतिर्मय क्षण से अगर बच्चे का जन्म हो, तो हमने पहले ही कदम पर उसे महापाठ सिखा दिया। हमने उसे सिखा दिया कि कैसे अंधकार से ज्योति की ओर जाया जाता है। हमने उसे पहला ध्यान का अनुभव दे दिया कि कैसे सब कुछ मौन और शांत और आनंद से परिपूरित हो सकता है।

और अगर मां पूरे नौ महीने बच्चे को ध्यान में रख कर चले, ऐसा कुछ भी न करे जो ध्यान के विपरीत है, और ऐसा सब कुछ करे जो ध्यान के लिए सहयोगी है। तो निश्चित इन नौ महीनों में किसी भी बुद्ध को जन्म दिया जा सकता है। ये नौ महीने उस बच्चे के निर्माण के क्षण हैं। और इन नौ महीनों में सिर्फ उसे प्रेम का अनुभव हो, शांति का अनुभव हो, ज्योति का अनुभव हो। इन नौ महीनों में अगर उसे सिर्फ एक ही बात का अनुभव हो--अपनी आत्मशक्ति का, तो वह बच्चा पैदा होते ही साधारण बच्चा नहीं होगा। वह असाधारण होगा। और हमने उसके जीवन की बुनियाद रख दी है। और अब जो मंदिर खड़ा होगा उस बुनियाद पर, वह बुनियाद से भिन्न नहीं हो सकता।
इसलिए जब भी कोई मां-बाप अपने बच्चों के प्रति मुझसे शिकायत करने आते हैं, तो मैंने उन्हें कहा है कि तुम्हें चाहे बुरा लगे, मगर जिम्मेवार तुम हो। तुमने गलत बुनियाद रखी होगी। आज तुम्हारा बच्चा डकैत है, आज तुम्हारे बच्चे ने खून किया है, तो तुम कहो कि नौ महीने में जब बच्चा गर्भ में था, तुमने क्या किया था उसको ऐसी बुनियाद देने का, जिसमें खून असंभव हो, जिसमें डकैती असंभव हो। शायद तुमने सोचा भी नहीं था।
निश्चय ही ध्यान जीवन के प्रत्येक अनुभव में उपयोगी है। और जन्म तो जीवन की सबसे बड़ी घटना है।
और ध्यान प्रेम के क्षण में सबसे सरल, सबसे सुगम बात है।
क्योंकि प्रेम के क्षण में सहज ही विचार खो जाते हैं और एक तल्लीनता
छा जाती है। और एक सन्नाटा घेर लेता है। और एक प्रतीति होती है, जैसे हम भिन्न नहीं हैं अस्तित्व से, जैसे हम एक हैं। यही विचार केवल भारत में पैदा हुआ।
अगर भारत ने दुनिया को कोई भी चीज दी है, जिसको वह कह सके कि वह बिल्कुल उसकी अपनी है, तो वह है--तंत्र-शास्त्र।
और तंत्र-शास्त्र का सारा आधार एक है कि कैसे काम-ऊर्जा और ध्यान-ऊर्जा को एक कर दिया जाए।
और मैं अपने पूरे जीवन उस बात को दोहराता रहा हूं। लेकिन लोग अजीब हैं। आंखें हैं और आंखें नहीं हैं। कान हैं और कान नहीं हैं। और बीच में मध्यस्थ हैं उन्हें समझाने वाले।
मेरी एक-एक बात को गलत करके समझाया गया है। जब कि मैं मौजूद हूं और मुझसे पूछा जा सकता है। लेकिन किसी को फिकर नहीं पड़ी सत्य को जानने की। लोगों को फिकर सिर्फ एक बात की है कि उनकी धारणाओं पर कोई चोट न आए। फिर चाहे उनकी धारणाएं उन्हें गरीबी में ले जाएं, उनकी धारणाएं उन्हें अपराध

में ले जाएं, उनकी धारणाएं उन्हें मनुष्य से गिरा दें और पशुता में ले जाएं; वह सब ठीक। लेकिन कोई उनकी धारणाओं को न छुए। उनकी धारणाएं बड़ी छुई-मुई हैं। और मेरा एक ही अपराध रहा पूरे जीवन में कि उनकी हर धारणा को, जो उन्हें गिराती है, किसी भी तरह उनसे छुटकारा दिला दूं।
यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात होगी कि हर युगल इसे अपनी कसम बना ले कि
जब तक वह ध्यान में समर्थ नहीं हो जाता, किसी बच्चे को जन्म नहीं देगा। क्योंकि क्या फायदा है चंगीजखान और नादिरशाह और एडोल्फ हिटलर और मुसोलिनी, इनको पैदा करने से? अगर पैदा ही करना है तो कुछ पैदा करने योग्य--कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई नागार्जुन, कोई जो तुम्हारी प्रतिभा को निखार देगा, आगे ले चलेगा। मगर उसके लिए पहले तो मां-बाप को तैयार होना पड़ेगा।
और जब तक कोई ध्यान में स्वयं परिपक्व न हो जाए, उसे अधिकार नहीं मिलता बच्चे पैदा करने का।
और मेरा अपना अनुभव यह है हजारों लोगों के साथ काम करने का कि अगर पुरुष और स्त्री दोनों ध्यान में रसमग्न होना सीख गए हैं, तो संभोग के क्षण में उन करोड़ों जीवाणुओं में से केवल वही जीवाणु मां के अंडे तक पहुंचने में समर्थ होगा, जो उनके ध्यान के साथ एकरसता अनुभव कर रहा है। क्योंकि उनका ध्यान, उन दोनों की शक्ति, उसे शक्ति देगी। वह और सबको पीछे छोड़ जाएगा, वह उसकी गति बन जाएगी।
ध्यान के बिना बच्चों को पैदा करना, जीवन-ऊर्जा को व्यर्थ नष्ट करना है।

प्रश्नः ओशो, दुनिया भर में जनसंख्या विस्फोट है। मैंने सुना है, कुछ लोगों को यह कहते हुए कि धरती पर जब मनुष्यों का भार बढ़ जाता है तो प्रकृति उसे सहन नहीं करती। इसमें क्या सच्चाई है?

मनुष्य की सबसे बड़ी नासमझी यह है कि वह हमेशा अपने कर्मों का दोष किसी
और पर टाल देना चाहता है। जैसे इस कहावत में कि जब लोगों की संख्या बहुत बढ़ जाती है... ऐसा लगता है जैसे कि संख्या अपने आप बढ़ जाती है, जैसे हमारा इसमें कोई हाथ नहीं। जैसे हम तो दूर खड़े देख रहे हैं, संख्या बढ़ रही है। तो प्रकृति खुद बदला लेती है। तो भी हम बदले को प्रकृति पर टाल रहे हैं। सच्चाई यह है कि हम संख्या बढ़ाते हैं। और संख्या का बढ़ना अपने आप में बदला बन जाता है।
न तो परमात्मा संख्या बढ़ाता है, न प्रकृति संख्या बढ़ाती है, और न प्रकृति बदला लेती है। हम जिम्मेवार हैं।
मगर हमारी कहावतें बड़ी होशियारी से भरी हैं। हालांकि सिवाय नासमझी के उनमें कुछ भी नहीं, हम अपने को दूर ही रख लेते हैं। ऐसी बहुत कहावतें हैं। जब प्रकृति पर पाप बढ़ जाते हैं, तो परमात्मा जन्म लेते हैं। पाप जैसे अपने आप बढ़ जाते हैं। और तब भी हमसे कुछ किए नहीं होता, तब भी परमात्मा को जन्म लेना पड़ता है।
और कितनी बार परमात्मा जन्म ले चुका। और पाप घटते नहीं। लगता है परमात्मा की भी कोई सामर्थ्य नहीं है इन पापों को घटाने की। दुनिया की कोई शक्ति इन पापों को नहीं घटा सकती, क्योंकि बढ़ाने वाला मौजूद है, और बढ़ाने वाले हम हैं।
जीवन में सबसे बड़ा धार्मिक कृत्य मैं इस बात को मानता हूं कि व्यक्ति अपनी जिम्मेवारी को परिपूर्णता से स्वीकार करे। यह अंगीकार करे कि जो भी हम कर रहे हैं, वह हम कर रहे हैं, और जो भी परिणाम आएगा, वह हम ला रहे हैं। यह बात तीर की तरह प्रत्येक हृदय में चुभ जानी चाहिए। तो निश्चित ही बदलाहट हो सकती है। क्योंकि यदि हम ही कर रहे हैं, तो हम रोक सकते हैं। यदि हम ही ला रहे हैं गलत परिणाम, दुष्परिणाम, तो क्यों न बीज से ही बात को काट दिया जाए।
लेकिन ये कहावतें हमें सहारा देती हैं कि हम बैठ कर देखते रहें। जनसंख्या बढ़ती रहेगी, घबड़ाने की कोई बात नहीं। प्रकृति खुद बदला लेगी।
प्रकृति क्या बदला लेगी? प्रकृति तो हमारे भार के तले दबी जाती है। एक

सीमा है हर चीज की। जैसे बुद्ध के समय में भारत की कुल आबादी दो करोड़ थी। देश संपन्न था, सुखी था, आनंदित था और जीवन की ऊंचाई से ऊंचाई की बातें करता था। और ऊंचाई से ऊंचाई तक उड़ने की चेष्टा की थी। सारी दुनिया में एक ही बात जानी जाती थी कि भारत एक सोने की चिड़िया है।
बुद्ध के बाद हमारा पतन शुरू होता है। और मैं बुद्ध को और महावीर को माफ नहीं कर सकता। मैं उन्हें आदर करता हूं, सम्मान करता हूं लेकिन माफ नहीं कर सकता। चाहे अनजाने ही सही, उन्होंने भारत की गरीबी को बढ़ने में सहायता दी है। क्योंकि उन दोनों ने यह बात सिखाई कि दुनिया को त्याग देने में ही धर्म है। और अगर लोग दुनिया को त्यागने लगें, किसान खेती को त्याग दे, दुकानदार दुकान को त्याग दे, मूर्तिकार मूर्तियां न बनाएं, लोग अगर त्यागने लगें दुनिया को तो स्वभावतः दुनिया दरिद्र हो जाएगी। क्योंकि दुनिया को हम बनाते हैं। दुनिया हमारे सृजन पर निर्भर है।
और इन दोनों व्यक्तियों ने एक बात सिखायी कि तुम सब छोड़-छाड़ कर संन्यासी हो जाओ। करोड़ों लोग सब छोड़-छाड़ कर संन्यासी हो गए। उन करोड़ों लोगों से जो उत्पादन होता था, जो सृजन होता था, वह बंद हो गया। उन करोड़ों लोगों की पत्नियां और बच्चे अनाथ और भूखे हो गए। और वे करोड़ों लोग शेष सारी जनता पर बोझ हो गए। क्योंकि भिक्षा कौन देगा? वस्त्र कौन देगा? एक बहुत ऊंचे दिखने वाले खयाल के पीछे भारत की पूरी दासता और पूरी गरीबी और पूरी दीनता छिपी है। संसार का त्याग पुण्य हो गया, संन्यास हो गया।
इसलिए मैंने जब संन्यास देना शुरू किया, तो मैंने संन्यास की पूरी परिभाषा बदली। संसार का त्याग नहीं, वरन संसार के बीच रह कर यूं रहना, जैसे कि तुम वहां नहीं हो। संन्यास की मेरी परिभाषा पुराने संन्यास से बिल्कुल उलटी है। छोड़ना नहीं है कुछ और पकड़ना भी नहीं है कुछ। यूं जीना है, जैसे कोई नाटक में अभिनय करता हो। राम बने, तो भी जानता है कि वह राम नहीं है। और संसार में रह कर संसार का न होना, बड़ी से बड़ी कला है।
छोड़ कर भाग जाना तो कमजोरी है और कायरता है। और जो व्यक्ति संसार में यूं रह सके, जैसे अभिनय करता हो, वह अछूता जीता है। उस पर कोई दाग नहीं छूट जाते। और चूंकि उसे कुछ छोड़ना नहीं है, वह जीवन को कुछ देकर जाता है। सृजन करता है। जीवन उससे समृद्ध होता है। और चूंकि उसकी कोई आसक्ति, कोई लगाव, कोई मोह और कोई बंधन नहीं है संसार से वरन यह उसकी आनंद-लीला है।
कोई गरीबी की जरूरत नहीं है और न कोई गुलामी की जरूरत है। मेरे संन्यासी एक समस्या बन गए हैं धर्मों के लिए। क्योंकि उनकी पूरी धारणा संन्यास की जीवन-विरोधी है और मेरी धारणा जीवन के प्रति परिपूर्ण ओतप्रोत हो जाने की है।
ये सारी कहावतें बेमानी हैं। एक बात फिर से मैं दोहरा दूं, यह बात तीर
की तरह हमारे हृदय में चुभी रहनी चाहिए कि हर कृत्य के लिए हम जिम्मेवार हैं। और हर कृत्य के परिणाम के लिए हम जिम्मेवार हैं। न तो हम किसी परमात्मा पर और न किसी प्रकृति पर अपने कृत्यों और अपने परिणामों को थोप सकते हैं। एक बार यह बात साफ हो जाए तो इस देश का सारा कचरा कट जाए। इस देश को हम फिर से नया जीवन, पुनरुज्जीवन दे सकते हैं। और जरूरी है कि वह दिया जाए। अन्यथा यह देश मरेगा। जिन धारणाओं में यह अब तक जीया है, आगे नहीं जी सकेगा। इस सदी तक, इसके पूर्ण होने तक, अगर यह इन्हीं धारणाओं से जीता रहा तो यह बुरी तरह मरेगा। इसने बहुत दुख झेले हैं, बहुत गुलामी झेली है, लेकिन अभी अंतिम दुख झेलने को बाकी है। उसे टाला जा सकता है।
और सरल सी बात है कि हमारे पास जो भी साधन हैं--न्यूजपेपर हों, रेडियो हों, टेलीविजन हों, जो भी साधन हैं, जनता तक ठीक-ठीक विचार पहुंचाने के, हम उन विचारों को जनता तक पहुंचने दें। और चिंता न करें। जैसे मेरे विचार हैं। सैकड़ों प्रश्न आएंगे, मैं उनके प्रत्युत्तर देने को राजी हूं। मैं एक भी प्रश्न को बिना उत्तर दिए नहीं छोड़ने की बात कर रहा हूं। ये सारे शिक्षा के साधन हो जाने चाहिए। न केवल समाज और समाचार वितरण के, बल्कि सामाजिक क्रांति के भी। तो जब तुम इन सारी बातों को प्रसारित करोगी, हजारों प्रश्न आएंगे। मैं हमेशा तैयार हूं। जो भी प्रश्न तुम ठीक समझो, जरूरी समझो, उसे सदा मेरे पास ले आ सकती हो।

फिर अमरित की बूंद पड़ी
दूसरा प्रवचन

एक नया ध्रुवतारा

मैं अभी-अभी आपके प्रश्नों को देख रहा था। यह जान कर दुख होता है कि भारत की प्रतिभा ऐसी कीचड़ में गिरी है कि प्रश्न भी नहीं पूछ सकती। और जो प्रश्न भी पूछती है, वे सड़े-गले हैं, उनसे दुर्गंध उठती है। लेकिन तुम चाहते हो तो मैं जवाब दूंगा, लेकिन छाती पर हाथ रख लो, चोट पड़े तो परेशान मत होना। और जो मैं कहूं उसमें से एक भी शब्द काटा न जाए और जो मैं कहूं उसमें एक भी शब्द जोड़ा न जाए। ताकि तुम्हारी तस्वीर न केवल भारत के सामने बल्कि दुनिया के सामने स्पष्ट हो सके। प्रश्न भी पूछना मुश्किल है तो उत्तर तो तुम क्या समझ पाओगे। लेकिन मैं कोशिश करूंगा। शुरू करो।

प्रश्नः दुनिया का सबसे अच्छा राष्ट्र कौन सा है? और सबसे खराब राष्ट्र आप किसे मानते हैं?

भारत दोनों है, क्योंकि यहां मैं भी हूं और तुम भी हो। और भारत ने इस संसार में चेतना की ऊंचाइयां छुई हैं और अब मैं तुम्हें नालियों में पड़ा हुआ भी देख रहा हूं। और नालियों के तुम इतने आदी हो गए हो, तुमने उन्हें मंदिर बना लिया है। तुम उनसे निकलना भी नहीं चाहते!
फ्रांस में क्रांति हुई। वहां एक केंद्रीय जेल था बैस्तिले, जहां केवल आजीवन सजा पाए हुए लोगों को रखा जाता था। उनकी हथकड़ियां, उनकी बेड़ियां उनके मरने पर ही तोड़ी जाती थीं। एक बार उनके ताले बंद हो जाने पर चाबियां कुओं में फेंक दी जाती थीं। अंधेरी कोठरियों में भारी जंजीरों में बैस्तिले के हजारों कैदी रह रहे थे। जब क्रांति हुई तो स्वभावतः क्रांतिकारियों के मन में उठा कि इन कैदियों को मुक्ति देना सबसे पहला काम है। इन्होंने सबसे ज्यादा दुख सहा है।
उन्होंने बैस्तिले के द्वार तोड़े। लेकिन बैस्तिले के कैदी कारागृह
से बाहर जाने को राजी नहीं थे। क्योंकि कोई साठ वर्ष से वहां था, कोई पचास वर्ष से वहां था। न कोई जिम्मेवारी; समय पर भोजन--कूड़ा-कचरा ही सही। और वे बेड़ियां अब तक उनके शरीर का अंग बन चुकी थीं।
लेकिन क्रांतिकारी जिद्दी होते हैं। उन्होंने जबरदस्ती बेड़ियां और जंजीरें तोड़ दीं और बैस्तिले के लोगों को मुक्त कर दिया। रोते हुए बैस्तिले के कैदी बाहर निकले, यह कहते हुए कि हम जाएंगे कहां? अब तो हम भूल गए वे नाम और पते भी। अब तो हम भूल गए वे लोग जो हमें जानते थे। शायद वे अब इस दुनिया में भी न हों। हमारी पत्नियां, हमारे बच्चे--उनका क्या हुआ, कहां गए, कोई पता नहीं। सोने को छप्पर नहीं है, खाने को भोजन नहीं है, बिछाने को बिस्तर नहीं है। जबरदस्ती क्रांति!
दुनिया में एक चीज मुश्किल है। जबरदस्ती क्रांति मुश्किल है।
क्रांति तो फूल है, जो तुम्हारे भीतर खिले तो खिले, कोई उसे जबरदस्ती नहीं खिला सकता।
सांझ होते-होते करीब-करीब आधे से ज्यादा कैदी वापस आ गए। उन्होंने कहा, हम दिन भर भूखे रहे, न कोई नौकरी देने को राजी है, न अब हमारी क्षमता रही है कि हम कोई काम कर सकें। न हमें कोई सम्मान मनुष्य होने का उपलब्ध हो सकता है। और सबसे बड़ी मुसीबत यह है कि वे जंजीरें जो हमारे हाथों पर सदा के लिए डाल दी गई थीं, बेड़ियां जो हमारे पैरों में सदा के लिए डाल दी गई थीं-- तीस साल, चालीस साल, पचास साल--हम उनके बिना सो नहीं सकते। उनका वजन हमारी नींद का हिस्सा बन गया है। क्षमा करो, हमें हमारी अंधेरी कोठरियों में जाने दो। बाहर की रोशनी हमें भाती नहीं है।
तुम पूछते होः "कौन सा देश सबसे अच्छा है और कौन सा देश सबसे बुरा है?" देश तो होते ही नहीं। देश तो झूठ हैं। राष्ट्र तो मनुष्य की ईजाद हैं। असलियत है व्यक्ति की। इस देश ने गौतम बुद्ध, उपनिषद के ऋषि, महावीर,

आदिनाथ--आकाश की ऊंचाई से ऊंचाई छुई है। वह भी एक भारत है। वही पूरा भारत होना चाहिए।
और एक भारत और भी है। राजनीतिज्ञों का, चोरों का, कालाबाजारियों का।
भारत के भीतर भारत है।
इसलिए यह सवाल नहीं है कि कौन देश श्रेष्ठ है और कौन देश अश्रेष्ठ है? सवाल यह है कि किस देश में अधिकतम श्रेष्ठ लोगों का निवास है और किस दिश में अधिकतम निकृष्ट लोगों का निवास है। भारत में दोनों मौजूद हैं।
तो एक हाथ से मैं भारत के झंडे को ऊंचा भी करना चाहता हूं और एक हाथ से भारत के झंडे को गिरा भी देना चाहता हूं। मैं भारत को कोई एक इकाई नहीं मानता। इसलिए मेरे लिए प्रश्न निरर्थक है। यह तुम पर है।
मैं सारी दुनिया में चक्कर लगा आया हूं। सभी जगह अच्छे लोग हैं और सभी जगह बुरे लोग हैं। लेकिन बुरे लोग ताकत में हैं हर जगह। और अच्छे लोग शक्तिहीन हैं हर जगह। अच्छाई की एक मजबूरी है। अच्छाई आक्रामक नहीं होती। हिंसात्मक नहीं होती। बुराई आक्रामक होती है। हिंसक होती है। स्वभावतः बुराई छाती पर चढ़ जाती है। और अच्छाई को कोई मौका भी नहीं मिलता।
दूसरी खूबीः अच्छाई को कोई आकांक्षा भी नहीं होती कि उसे स्वीकार मिले। अच्छाई अपने आप में ऐसा सुखद अनुभव है कि अब और कुछ और न चाहिए, न जोड़ा जा सकता है। बुराई महत्वाकांक्षी है। तो अगर बुरे लोगों को देखना हो तो राजनीति। और अगर अच्छे लोगों को देखना हो तो शांत, मौन, ध्यान में संलग्न लोग। दुनिया दो हिस्सों में बंटी है, दो देशों में नहीं। बुरे लोग छाती पर सवार हैं और अच्छे लोग, इतने अच्छे लोग हैं कि उनसे यह भी नहीं कहते कि अब उतरो भी। उनके छाती पर सवार होने से भी फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि उनकी आनंद की, उनके प्रेम की, उनके अमृत की वर्षा उनके भीतर हो रही है।
प्रश्न तुम्हारा गलत है। और गलत प्रश्न का सही उत्तर नहीं हो सकता।

प्रश्नः आपने अभी कहा कि दुनिया दो हिस्सों में बंटी हैः अच्छाई और बुराई। आप हिंदुस्तान से अच्छाई की तलाश में बाहर गए। आपको पिछली यात्रा के दौरान कितनी अच्छाई और कितनी बुराई मिली देखने को?

यह किस बेवकूफ ने तुमसे कहा कि मैं अच्छाई की तलाश में बाहर गया था या
कि यह तुम्हारी खुद की ईजाद है?

प्रश्नः यदि अच्छाई और बुराई दोनों हिंदुस्तान में थीं...

पहले मेरे प्रश्न का उत्तर... । यह कोई साधारण राजनीति की पत्रकार परिषद नहीं है। यहां से तुम अच्छी तरह पिट कर बाहर निकलोगे। तुमसे किसने कहा कि मैं अच्छाई की तलाश में बाहर गया था?
मैं अच्छाई के प्रचार के लिए बाहर गया था। और मैंने अच्छे लोग पाए। और मैंने बुरे लोग भी पाए। और मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि तुम कहां रहते हो, इससे फर्क पड़ता कि तुम कौन हो। जमीन से कोई अच्छा और बुरा नहीं होता, जमीर से कोई अच्छा और बुरा होता है।

प्रश्नः आपने पिछले बत्तीस वर्षों में जो अनुभव किया है हिंदुस्तान में और बाहर रह कर, उसके बाद भारत, अमरीका, धर्म, सेक्स, भारत की समस्याएं और उनके समाधान के बारे में आपके जो अब तक विचार रहे हैं, उनमें कोई खास बदलाव आया है क्या?

बहुत बदलाव आया है। क्योंकि मैं कोई सड़ता हुआ बंद तालाब नहीं हूं। मैं एक बहती हुई गंगा हूं। हर क्षण मैं आगे बढ़ रहा हूं। यूनान के प्रसिद्ध विचारक हेराक्लाइटस ने कहा हैः एक ही नदी में तुम दुबारा नहीं उतर सकते। कभी न कभी, किसी न किसी नक्षत्र पर अनंत काल में हेराक्लाइटस से मेरी मुलाकात होगी ही। तो मैं उसको कहना चाहता हूं कि तुम एक ही नदी में एक बार भी नहीं उतर सकते। क्योंकि नदी बही जा रही है। जब तुम नदी का ऊपर का तल छू

रहे हो, तब नीचे का तल बह रहा है। और जब तक तुम नीचे के तल पर पहुंचते हो, ऊपर का तल जा चुका है।
बीज तो वही है--वृक्ष बना है, पत्तों से भरा है, फूल खिले हैं। मैंने अपने जीवन में किसी चीज के विरोध में विकास नहीं किया है। जो मैंने कहा है, उसे और परिष्कृत किया है। इसलिए निश्चित ही मैं वही नहीं कहूंगा जो मैंने तीस साल पहले कहा था। तीस साल पहले मैं बीजों की बात कर रहा था, अब मैं फूलों की वर्षा कर रहा हूं।

प्रश्नः जिस अभियान को लेकर मनुष्य की आत्मा मुक्त नहीं हुई और वह धर्म और परंपरा से उपजी वर्जनाओं के कारण भयाक्रांत सी हो गई है। इस संदर्भ में मानव मुक्ति के आपके कार्यक्रम में क्या योजना बनाई है?

मानव मुक्ति मनुष्य के स्वास्थ्य जैसी है। बीमारियां अलग-अलग हो सकती हैं। कोई क्षयरोग से बीमार है, कोई सर्दी-जुकाम से, कोई बुखार से, कोई कैंसर से। बीमारियां हजार हो सकती हैं, लेकिन स्वास्थ्य एक ही होता है। स्वास्थ्य बहुत प्रकार के नहीं होते। मानव मुक्ति मनुष्य का अंतिम स्वास्थ्य है। उसकी अंतिम खिलावट। उसके जीवन से सुवास का उठना।
हजारों वर्षों की निरंतर खोज से आदमी ने वह विज्ञान भी खोज लिया है।
उस विज्ञान को मैं ध्यान कहता हूं। ध्यान के अतिरिक्त कोई मनुष्य कभी मुक्ति का अनुभव नहीं करता। न तो प्रार्थना तुम्हें मुक्ति की तरफ ले जा सकती है, क्योंकि प्रार्थना में तुमने प्रारंभ से ही एक झूठ स्वीकार कर लिया, विश्वास कर लिया--ईश्वर है। जानते नहीं हो, पहचानते नहीं हो, मिल जाए तो भी पहचान न सकोगे। और प्रार्थना बहिर्गामी है इसलिए सांसारिक है। एक और यात्रा है--ध्यान की, अंतर्गामी--कि तुम अपनी खोज में निकलते हो। तुम स्वयं की पहचान को अपना अभियान बनाते हो और जिस दिन कोई व्यक्ति स्वयं को पहचान लेता है, उसी दिन उसके जीवन में कल्याण की वर्षा हो जाती है। और वह वर्षा एक जैसी है। वह वर्षा न तो देखती है कि यह छत मुसलमान की है, कि हिंदू की है, कि जैन की है। वर्षा के बादल को क्या लेना। तुम्हारी तैयारी चाहिए। और ध्यान का सूत्र छोटा सा है। सभी सूत्र छोटे होते हैं। ध्यान का छोटा सा सूत्र हैः अपने भीतर इतनी शांति, कि विचार की कोई तरंग भी न उठे। कोई लहर न हो ऐसा सन्नाटा; ऐसा शून्य, जहां बस तुम हो और कुछ भी नहीं है। जहां यह भाव भी नहीं है कि मैं हूं। उसी क्षण यह सारा विश्व तुम्हारे ऊपर ईश्वर बन कर बरस पड़ता है।
ईश्वर को खोजना नहीं पड़ता। जो लोग ईश्वर को खोजने निकलते हैं, वे भ्रांति में हैं। तुम क्या ईश्वर को खोजोगे? कोई पहचान नहीं, कोई नाम नहीं, कोई रूप नहीं, कोई रंग नहीं। ईश्वर तुम्हें खोजता है। पुरानी मिस्र की कहावत है कि जब भी शिष्य राजी होता है, गुरु प्रकट होता है। इसे थोड़ा बदल कर यूं कहें कि जब भी तुम शांत, शून्य और मौन होते हो, तुम्हारी अंतरात्मा ईश्वर के आनंद और सौंदर्य से भर जाती है। तुम अमृत हो जाते हो। इसके सिवाय कोई उपाय न कभी था, न कभी होगा।

प्रश्नः आपने कहा है कि आप जीवन भर झूठ नहीं बोले, किंतु शिष्यों की खातिर आपको झूठ भी बोलना पड़ा और अपने को रिहा करवाना पड़ा। भगवानों, संतों को अग्नि-परीक्षाओं के दौर से गुजरना पड़ता है। वैसा ही आपको नहीं करना था?

मैंने जीवन में तीन बार झूठ बोला है। किसने तुमसे कहा कि मैंने कभी झूठ नहीं बोला?

प्रश्नः आपने धर्मयुग को एक इंटरव्यू दिया है, उसमें कहा है।

धर्मयुग की कोई भूल होगी। मैंने तीन बार झूठ बोला है।

प्रश्नः कब?

क्योंकि मेरे लिए प्रेम और करुणा ज्यादा मूल्यवान है। एक बार मैं झूठ बोला मा आनंद शीला को बचाने के लिए। उसे मैंने लाख समझाया कि मेरा कभी कोई अडाप्शन नहीं हुआ है। मैं किसी की गोद नहीं लिया गया हूं। उसने झूठे कागजात तैयार किए, ताकि अमरीका में मुझे रहने के लिए आधार बनाया जा सके। उसके पिता ने झूठे दस्तावेज तैयार किए। मेरे सामने सवाल था एक बुजुर्ग, शीला और हजारों संन्यासियों के कम्यून का। झूठ सिर्फ इतना मैं बोला कि मुझे कोई पता नहीं है बचपन में अगर मुझे गोद ले लिया गया हो, लेकिन मुझे कभी कहा नहीं गया।
दूसरी बार मैं झूठ बोला अमरीका की जेल में, बारह दिनों तक हर तरह से परेशान किए जाने के बाद। अमरीकी सरकार ने मेरे वकीलों को कहा कि दो ही उपाय हैं। एक तो उपाय है कि यह मुकदमा वर्षों तक चले। हम जानते हैं कि हम मुकदमा हार जाएंगे। क्योंकि मैंने कोई पाप नहीं किया है। लेकिन मुकदमा दस साल चले, पंद्रह साल चले, बीस साल चले। इस बीच हम कम्यून को नष्ट कर देंगे। मेरे बिना कम्यून के प्राण निकल जाएंगे। और सारी दुनिया में संन्यासियों का ध्यान का आंदोलन नष्ट हो जाएगा। अगर मैं दो--और उन्होंने लिस्ट बनाई हुई थी एक सौ छत्तीस जुर्म मेरे खिलाफ--सब झूठ--अगर मैं दो जुर्म स्वीकार कर लूं तो आंदोलन बच सकता है, कम्यून बच सकता है, सारे विश्व में फैले हुए संन्यासी बच सकते हैं।
यह ब्लैकमेल था। मेरे अटर्नियों की आंखों में आंसू थे। उन्होंने कहा
कि हम जानते हैं कि यह सब झूठ है। लेकिन दो छोटे से अपराध स्वीकार कर लेने से यह सारा का सारा उपद्रव शांत हो सकता है। तो मैंने दो अपराध... सिर्फ दो शब्द मैं अमरीका की अदालत में बोला हूं, दोनों झूठ। और जज से कह कर यह बोला हूं कि यह मैं सत्य की शपथ खाकर बोल रहा हूं कि मैंने अमरीका में प्रवेश पाने लिए झूठे दस्तावेज पेश किए और मेरे संन्यासी अमरीका में रह सकें, इसलिए उनकी झूठी शादियां कीं।
न तो मैंने किसी की शादी की, न मैंने कोई झूठे दस्तावेज पेश किए।
इन तीन मौकों को छोड़ कर मैंने कोई झूठ नहीं बोला। और इन तीन झूठों के लिए मैं शर्मिंदा नहीं हूं, गौरवान्वित हूं। क्योंकि ये झूठ किसी बड़े आदर्श के लिए बोले गए थे। और ये झूठ मेरे किसी स्वार्थ के लिए नहीं थे। लेकिन इन तीन झूठों के सिवाय मेरा जीवन सिवाय सत्य के, चाहे वह कितना ही महंगा पड़ा हो, चाहे मैंने अपनी जान खतरे में डाली हो, मैं तैयार रहा हूं। मेरे जीवन पर बहुत हमले किए गए हैं--हिंदुस्तान में, अमरीका में। और
अब अमरीका चाहता है--आधा करोड़ रुपया देने को तैयार है, कोई आदमी, अगर मुझे मार डाले। मैंने खबर भेजी है रोनाल्ड रीगन को, क्यों बेचारे दूसरे आदमी को फंसाते हो, क्योंकि वह मुझे मारेगा तो अदालत में फंसेगा। आधा करोड़ रुपया मेरे काम के लिए दे दो, ध्यान के लिए दे दो, मैं मरने को तैयार हूं। सीधा सौदा है।
मेरी दृष्टि में झूठ और सत्य में निर्णायक बात झूठ और सत्य नहीं होते। निर्णायक बात होती है--कारण। मैंने तीनों बार झूठ दूसरों के लिए बोला है। अपने लिए नहीं। अपने लिए तो मैं मरने को भी तैयार हूं। झूठ बोलने का कोई सवाल नहीं है।

प्रश्नः आपने कहा कि तीनों बार झूठ आपने दूसरों के लिए बोला है। और जिस आंदोलन को लेकर आप पिछले बत्तीस सालों से चल रहे हैं, जिस पूरे समुदाय को लेकर आप चले रहे हैं, जो विचार और दर्शन आप लेकर चल रहे हैं, उस पूरे समुदाय में क्या कोई ऐसी शख्सियत अब तक नहीं बन पाई है कि आपको यह सोचना पड़ रहा है कि आपके बाद पूरे कम्यून का क्या होगा, पूरे विचार दर्शन का क्या होगा। क्या आप अब भी इस दिशा में कुछ सोचेंगे कि आपके बाद पूरे विचार और दर्शन को देश और विदेश में फैलाने के लिए कोई ऐसी शख्सियत तैयार की जाए या बनाई जाए?

मैं आदमी नहीं बनाता, क्योंकि बनाए हुए आदमी काम के नहीं होते। सिखाए हुए आदमी जीवन के मंदिर में प्रवेश नहीं पा सकते। अनेक मित्र हैं, जो तैयार हो रहे हैं, मगर मैं उन्हें बना नहीं रहा हूं। मैं सिर्फ वातावरण

बना रहा हूं। माली गुलाब के फूल बनाता नहीं है। सिर्फ जमीन तैयार करता है, बीज बोता है, खाद देता है--फूल तो अपने से आते हैं। मुझे कोई व्यक्ति के ऊपर अपने को थोपने का आग्रह नहीं है। उसे मैं आध्यात्मिक गुलामी कहता हूं। मैं जो कर सकता हूं जमीन तैयार करने का काम, वह मैं कर रहा हूं। उसमें जिनके भीतर भी थोड़ी आत्मा है, उनके फूल खिलेंगे--इस जन्म में, अगले जन्म में, किसी और जन्म में।
लेकिन इस जमीन को बनाने के लिए अगर मुझे तीन बार झूठ बोलना पड़ा है तो मैं शर्मिंदा नहीं हूं। शर्मिंदा होना चाहिए अमरीका की सरकार को। यह न्याय नहीं है। मैं अदालत में मुकदमा लड़ने को राजी था। यह पहला मौका है कि एक अकेला आदमी विश्व की सबसे बड़ी ताकत के खिलाफ खड़ा था। मेरे मुकदमे को उन्होंने नाम दिया था, मैंने नहीं--यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमरीका वर्सस भगवान श्री रजनीश। मैं तो वैसे ही जीत गया! और फिर भी उन्हें झूठ बोलना पड़ा और इस तरकीब से झूठ को पेश करना पड़ा कि मेरे वकीलों को कहना पड़ा--पैर छूकर, टपकते हुए आंसुओं से कि हमने अपने जीवन में इस तरह नहीं देखा। वे जो दो विकल्प दे रहे हैं, वे दोनों शरारत से भरे हुए हैं। मुकदमे को लंबाया जा सकता है, तुम्हारे काम को रोका जा सकता है।
मैं अगर झूठ बोल कर नरक में भी पड़ जाऊं तो मुझे कोई एतराज नहीं है। लेकिन मैं चाहूंगा कि जो जमीन मैं तैयार कर रहा हूं, वह तैयार हो जाए, कुछ फूल खिल उठें, कुछ झरने जाग जाएं, कुछ तारे उग आएं।
यह पहला मौका था कि अमरीकी सरकार ने निगोसिएशन के लिए मेरे वकीलों को निमंत्रित किया। अन्यथा वकील सरकार से प्रार्थना करते हैं कि कोई समझौता कर लिया जाए। अमरीकी सरकार समझौता करने को राजी थी और समझौता करने को क्यों राजी थी--कल मैंने कहा।
दो दिन पहले अमरीका के अटर्नी जनरल के मुंह से सच निकल गया। पत्रकारों की एक कांफ्रेंस में उनसे पूछा गया कि भगवान को सजा क्यों नहीं दी गई? तो उसने तीन कारण बताए। एक, कि हम भगवान के आंदोलन को नष्ट करना चाहते हैं। उनके कम्यून को नष्ट करना चाहते हैं। वह हमारी प्राथमिक दृष्टि है। दूसरा, हमारे पास भगवान के खिलाफ कोई भी सबूत नहीं है कि उन्होंने कोई जुर्म किया हो।
यह बड़ी मजेदार दुनिया है। मैंने कोई जुर्म नहीं किया, लेकिन साठ लाख रुपया जुर्माना मेरे ऊपर किया गया था, सारी दुनिया को यह दिखाने के लिए कि जुर्म जरूर किया गया होगा, नहीं तो साठ लाख रुपया क्यों जुर्माना किया जाए। और तीसरी बात और भी महत्वपूर्ण है। अमरीका के अटर्नी जनरल ने, जो कि वहां की सबसे बड़ी सरकारी कानूनी व्यवस्था का प्रमुख है, उसने कहा कि हम भगवान को एक मसीहा, एक शहीद नहीं बनाना चाहते थे। क्योंकि यह भूल पहले हो चुकी है।
सुकरात को जहर देकर मारा नहीं जा सका। ढाई हजार साल बीत गए, सुकरात ज्यादा जिंदा है, मारने वालों का कोई पता भी नहीं, नाम का भी पता नहीं। जीसस को सूली दी, तब तक जीसस के पास केवल दस-बारह शिष्य थे। सूली के बाद संख्या बढ़ती गई। अलहिल्लाज मंसूर को बोटी-बोटी काट डाला गया, लेकिन इससे कोई आत्माएं नहीं कटतीं। और भी सूफी हुए हैं उसी कोटि के, लेकिन अलहिल्लाज मंसूर ध्रुवतारे की तरह चमकता है।
हम नहीं चाहते थे कि भगवान को एक शहीद, एक ध्रुव तारा बना दें। और हमारा काम पूरा हो गया है। लेकिन फिर भी उन्होंने आखिरी कोशिश की, क्योंकि जैसे ही मैं जेल से बाहर निकला, अदालत ने मुझे छोड़ दिया, क्योंकि कोई मेरे खिलाफ कानून नहीं था और मेरे ऊपर कोई जुर्म न था, लेकिन मुझे जेल तक जाना जरूरी था। अपना सामान, अपने कपड़े--मैं चकित हुआ वहां देख कर कि जेल में सन्नाटा है। जो आधारभूत आफिस की जगह है, वहां कोई भी नहीं है। मैंने पूछा भी कि मैं कई बार यहां से आया-गया; यहां तो बड़ी धूम, बड़े आफिसर्स, जेलर, आज सब क्या हुआ, क्या मेरी खुशी में छुट्टी मनाई जा रही है? जो आदमी मुझे ले जा रहा था, एअरकंडीशंड जेल में, उसके माथे से पसीना बह रहा था। मैंने पूछा कि पसीना पोंछ डालो, क्योंकि पसीना भी बहुत कुछ कहता है। उसने मुझे उस जगह पहुंचाया आफिस में, जहां मुझे मेरा सामान वापस देना है। वहां भी एक ही आदमी था, इसके पहले वहां बारह आदमी से कम कभी भी नहीं थे। और उस आदमी ने कहा

कि मुझे अपने ऊपर के अधिकारी से दस्तखत लेने होंगे, इसलिए मैं जरा बाहर जाता हूं, आप आराम से बैठें।
पांच मिनट, दस मिनट, पंद्रह मिनट बीते, उस आदमी का कोई पता नहीं और वह बाहर से ताला लगा गया! मैं कोठरी में अकेला हूं। जेल से बाहर आने पर पता चला कि जिस कुर्सी पर मुझे बिठाया गया था, उसके नीचे टाइम बम था। लेकिन वह टाइम बम ठीक से व्यवस्थित न कर सके, क्योंकि पता नहीं अदालत में कितनी देर हो। और जज के सामने साफ था कि मामले में कुछ भी नहीं है, इसलिए पांच मिनट में मुकदमा समाप्त हो गया। उन्होंने सोचा होगा पांच बजे मैं आऊंगा। मैं बहुत जल्दी पहुंच गया। उस जेल के अंदरूनी कमरे में सिवाय सरकार के और कोई आदमी टाइम बम नहीं रख सकता, पहुंच नहीं सकता।
क्या घबड़ाहट थी? मुझे मार डालने की क्या घबड़ाहट थी?
और यही मेरे अटर्नीज का कहना था कि अगर मैं ये दो छोटे से जुर्म स्वीकार नहीं कर लेता हूं तो हम आशा नहीं करते कि जेल से तुम वापस आ सकोगे। मुकदमा लंबाया जाएगा। जेल में बहाने खोजे जाएंगे। और जेल में बहाने खोजे गए।
मुझे एक जेल में रखा गया एक आदमी के साथ, जो मर रहा है और जिसको ऐसी छूत
की बीमारी है कि उसका कोई इलाज नहीं। और उसकी कोठरी में छह महीने से किसी को भी नहीं रखा गया था। उस आदमी ने एक कागज पर लिख कर मुझे दिया कि इसके पहले कि आप कोई चीज छुएं, डाक्टर और जेलर को बुलाएं और पूछें कि क्यों मुझे यहां रखा गया है। मैं मर रहा हूं और यह एक अपरोक्ष तरकीब है आपको मार डालने की--शहीद भी न बनो, मसीहा भी न बनो और बीमारी से मर जाओ! जरा सोचो जीसस अगर खाट पर मरते, जैसा कि निन्यानबे आदमी चुनते हैं मरने के लिए, दुनिया में कोई क्रिश्चिएनिटी न होती।
एक घंटा लगा मुझे दरवाजे को पीटने में, तब डाक्टर आया और मैंने डाक्टर
से पूछा कि छह महीने से जब कोई आदमी इस सेल में नहीं रखा गया और तुम विरोध करते रहे हो, तो आज तुम मौजूद थे, तुम्हारे सामने मुझे इस जेल में रखा गया है, इस सेल में रखा गया और तुमने कोई विरोध नहीं किया? तुम डाक्टर हो या हत्यारे हो?
दूसरी जेल में मुझसे कहा गया कि मैं अपना नाम न लिखूं, जब फार्म भरता हूं प्रवेश का तो अपने नाम की जगह लिखूं डेविड वाशिंगटन। मैंने कहाः डेविड वाशिंगटन मेरा नाम नहीं है। मैं रात भर यहां ऑफिस में बैठा रह सकता हूं, लेकिन डेविड वाशिंगटन मेरा नाम नहीं है और मैं नहीं लिखूंगा और मेरे साथ तुम्हें भी बैठना पड़ेगा। बारह बजे रात, यू.एस. मार्शल खुद, कोट पर लिखा हैः डिपार्टमेंट ऑफ जस्टिस। मैंने पूछा कि कम से कम इस कोट को तो निकाल दो। और तुम फार्म भर सकते हो, दस्तखत मैं कर दूंगा। उसने समझा कि चलो यह भी समझौता ठीक है। उसने फार्म भर दिया अपने हैंडराइटिंग में और मैंने दस्तखत किए हिंदी में। उसने कागज को सब तरफ से घुमा कर देखा और कहा कि यह क्या है? मैंने कहाः डेविड कूपर फील्ड, डेविड वाशिंगटन, जो बनाना चाहो, इससे बना सकते हो। ये मेरे दस्तखत हैं। और तुम डिपार्टमेंट ऑफ जस्टिस को सम्हालते हो। क्या तुम यह भी नहीं समझ सकते कि मुझमें इतनी बुद्धि है कि मैं सोच सकूं कि मेरा नाम तुम फार्म पर नहीं भरना चाहते क्योंकि अगर तुम मुझे मार डालो जेल में तो मेरा कोई पता भी नहीं चल सकेगा कि मैं कहां खो गया? इसलिए हैंडराइटिंग तुम्हारे हैं और दस्तखत मेरे हैं। तुमने अपनी फांसी का इंतजाम खुद कर लिया है। ठीक पांच बजे सुबह मुझे बदल कर दूसरी जेल में भेज दिया गया, क्योंकि वह फार्म नष्ट करना था।
मुझे इस बात की चिंता नहीं है, क्योंकि जीवन से जो मुझे मिल सकता था,
वह मिल सका है। अब और जीवन से कुछ पाने का कोई सवाल नहीं है। लेकिन लाखों लोग हैं दुनिया में जो तैयार हो रहे हैं। मैं उनकी तैयारी के लिए जीना चाहता हूं। मैंने झूठ बोला सत्य की सेवा के लिए।

प्रश्नः दिसंबर में इंडिया टुडे के इंटरव्यू में आपने कहा था, दिसंबर महीने में अमरीकी घटना के बाद, कि राजीव गांधी चूंकि एक गैर-राजनीतिक व्यक्तित्व हैं, इसलिए उनसे उम्मीद की जा सकती है कि वे कुछ अच्छा करेंगे।

परसों के इंटरव्यू में आपने कुछ ना-उम्मीदी जाहिर की है राजीव गांधी के काम करने के तरीके के बारे में। इस पर अगर आप इलैबरेट करें तो कृपा होगी।

मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूं, लेकिन इतना मैं जानता हूं कि कौन चमार
है और अच्छे जूते बना सकता है। राजीव एक अच्छे पायलट हैं। लेकिन अच्छा पायलट होना प्रधानमंत्री होने के लिए कोई सर्टिफिकेट नहीं है। और आने वाला चुनाव निर्णय करेगा इस बात का।
सच में इंदिरा गांधी की हत्या का राजीव ने पूरी तरह शोषण किया है। मां
के खून पर राजीव गांधी हिंदुस्तान के प्रधानमंत्री हैं। हम यहां खून देने वाले चाहते हैं, मां के खून को भी बेच देने वाले नहीं। राजीव की अपनी क्षमताएं हैं, अपनी प्रतिभा है, वह उसका उपयोग करे।
और इंदिरा गांधी के जिंदा रहते समय, मैंने राजीव को संदेश दिया था कि अगर तुम्हें कभी राजनीति में आना है तो अभी से अपनी मां के चरणों में बैठ कर शिक्षण शुरू करो। जो उत्तर मुझे मिला था, वह यह था कि मैं ही अकेला घर में कमाने वाला हूं। संजय मर चुका था और अगर इंदिरा अपनी सत्ता खो देती है तो मेरे सिवाय परिवार को भोजन भी देने वाला कोई भी नहीं है। फिर मेरी राजनीति में कोई उत्सुकता भी नहीं है। क्या तुमने कभी सुना है कि इंदिरा गांधी और उसके जिंदा रहते समय राजीव ने कोई उत्सुकता राजनीति में ली हो? कोई अ ब स भी राजनीति का सीखा हो। छोकरों की एक जमात मुल्क की छाती पर सवार हो गई है। आने वाले इलेक्शन तक उनकी धज्जियां उड़ जाएंगी। और झूठ-फरेब लंबा अभ्यास चाहते हैं।
विरोधी पार्टी के नेता ने पार्लियामेंट में पूछा कि भगवान को भारत से बाहर जाना पड़ा, मैं वापस आया था। क्या उन पर ये शर्तें लादी गई थीं कि आप भारत के बाहर नहीं जा सकते और भारत से बाहर के संन्यासी आपसे मिलने नहीं आ सकते; और खासकर भारत के बाहर से पत्रकार, न्यूज मीडिया को आप तक नहीं पहुंचने दिया जाएगा? मैंने कहा, तो अमरीका की जेल में और भारत की जेल में क्या फर्क होगा?
कम से कम अमरीका की पहली जेल में जेलर मुझे पढ़ता रहा था, सुनता रहा था,
वह इतना उत्सुक था कि उसने सारे कानून को एकतरफा रख कर जेल के भीतर वर्ल्ड प्रेस कांफ्रेंस बुलाई। अमरीका में मैं जेल के भीतर, वर्ल्ड कांफ्रेंस के भीतर पत्रकारों से बात कर सकता हूं अमरीका की गवर्नमेंट के खिलाफ!
और भारत में मैं स्वतंत्र रह कर भी पत्रकारों से नहीं मिल सकूंगा और
जो मुझे प्रेम करते हैं वे मेरे पास न आ सकेंगे, तो मेरे रहने, न रहने का कोई उपयोग नहीं है।
मेरे छोड़ दिए जाने पर भारत से विरोधी पार्टी के नेता ने यह प्रश्न पूछा कि क्या ये शर्तें लगाई गई थीं कि उनके शिष्य उनसे मिलने नहीं आ सकते? और राजीव गांधी की सरकार ने उत्तर दिया कि यह बात झूठ है, उनके शिष्य मिलने आ सकते हैं। तो मैंने अपने बहुत से संन्यासियों को अलग-अलग देशों में, अलग अलग एंबेसीज में वीसा लेने के लिए भेजा। हर जगह से इनकार मिला। आश्चर्यजनक! यहां सरकार कह सकती है कि वे आ सकते हैं और एंबेसीज को खबर करते हैं कि उनका कोई भी व्यक्ति भारत न आने पाए। ये झूठ और फरेब इस देश को ऊंचा नहीं उठा सकते।
और ये व्यक्ति जो आज सत्ता में हैं, इतने नपुंसक हैं कि देश से वह भी नहीं कह सकते, जिससे देश का भला हो सके--कि अपनी संख्या कम करो, कि संतति- नियमन करो। ये देश को मौत की तरफ ढकेल रहे हैं। यह जान कर तुम्हें आश्चर्य होगा कि भारत में भूख है और भारत का गेहूं भारत के बाहर बेचा जा रहा है। क्योंकि उसी धन के बल पर न्युक्लियर एनर्जी और उसके प्रसाधन खरीदे जा सकते हैं। तुम्हारे पेट से किसी को मतलब नहीं है।
मैं सोचता था कि राजीव चूंकि राजनीतिज्ञ नहीं हैं, बल्कि अनायास एक गैर-राजनीतिज्ञ राजनीति में पहुंच गया है। इसलिए मैंने तारीफ की थी कि शायद उससे हम आशा बांध सकते हैं। लेकिन अब कोई आशा बांधने की जरूरत नहीं है।
यह देश मरेगा गरीबी से और जिम्मेवार राजीव गांधी होंगे। आज पंजाब में तुम लोगों को मारोगे, लेकिन कहां-कहां तुम लोगों को मारोगे?

राजीव के पास कोई व्यक्तित्व नहीं है, न ही कोई वक्तव्य है, न ही कोई करिश्मा है, कि इस सारे देश को इकट्ठा रख सकें। आसाम अलग होना चाहता है। तमिलनाडु कल अलग होना चाहेगा। इस देश में तीस भाषाएं हैं, वे तीस देशों में बंट जाना चाहती हैं।
यह मैं आपको स्मरण दिला दूं कि हजारों साल से भारत एक राष्ट्र नहीं रहा है। बुद्ध के जमाने में, ढाई हजार साल पहले इस देश में पांच हजार राज्य थे। यह तो मुसलमानों, मुगलों, तुर्कों, हूणों और अंग्रेजों की जबरदस्ती के कारण तुम्हें बांध कर रखा गया है। लेकिन अब तुम्हें बांध कर नहीं रखा जा सकता। अब तो तुम्हें प्रेम से ही एक रखा जा सकता है। अब तो सिर्फ एक ही बंधन इस देश को राष्ट्र बनाए रख सकता है--और वह प्रेम का है। न तो भाषा का, न धर्म का, न प्रांत का, वरन सिर्फ प्रेम का।
राजीव के पास प्रेम का क्या संदेश है? ध्यान का क्या संदेश है? हिंदुस्तान की पार्लियामेंट रिटार्डेड है। इनमें से किसी के भी मस्तिष्क की जांच की जा सकती है, चौदह साल से ज्यादा निकल आए, बहुत मुश्किल है। इस देश को नासमझ छोकरों के हाथ में छोड़ दिया गया है। यह सारी स्थिति बदलनी होगी।
इस देश में विचारशील लोग भी हैं। बुद्धिमान लोग भी हैं। ऐसे लोग भी हैं जिन्हें राजनीतिक महत्वाकांक्षा नहीं है, लेकिन फिर भी जिनके दिल में देश के लिए करुणा है। लेकिन एक मुसीबत है जो महत्वाकांक्षी हैं, अनिवार्य रूप से हीनता-ग्रंथि से पीड़ित होते हैं। अपनी हीनता को दबाने के लिए बड़े पदों पर पहुंचने की कोशिश करते हैं। और जो हीनता-ग्रंथि से पीड़ित नहीं हैं--संतुष्ट हैं, मग्न हैं अपने में--वे कोई भीख नहीं मांगते-फिरते वोटों की। तुम भिखारियों के द्वारा आशा छोड़ दो कि यह देश ऊपर उठ सकेगा। हमें रास्ता बदलना पड़ेगा। हमें जाना पड़ेगा उन लोगों से प्रार्थना करने जो इस देश को सम्हाल सकते हैं। वे तुम्हारे पास वोट मांगने नहीं आएंगे। और उनकी कोई कमी नहीं है।
इसलिए मैंने अपने दृष्टिकोण में पूरा परिवर्तन किया है। मैं बारह दिन
तक अमरीका की जेल में था। राजीव ने कोई भी उपाय नहीं किया भारतीय राजदूत के द्वारा कि कम से कम इतना तो पूछे कि मेरा जुर्म क्या है? और बिना अरेस्ट वारंट के मुझे क्यों पकड़ा गया है? और बिना अदालत में लिए जाए, मुझे क्यों जबरदस्ती एक जेल से दूसरी जेल में घसीटा जा रहा है!
न, अमरीका को कोई नाराज नहीं करना चाहता। सब भिखारी हैं। अमरीका से वे साधन चाहिए जो नाइट्रोजन बम पैदा कर सकें, जो मृत्यु की किरणें पैदा कर सकें। जीवन में किसी का रस नहीं है।
यह कर्तव्य था राजीव गांधी का कि एक भारतीय के ऊपर बिना किसी जुर्म के, बिना किसी कारण के जबरदस्ती अत्याचार ढाया जा रहा हो, तो वह आवाज उठाए। दुनिया के दूसरे देशों से आवाजें उठीं, सिर्फ भारत चुप रहा। और जिस दिन मैं जेल से छूट कर आया, उस दिन भारतीय राजदूतावास का एक आदमी पूछने आया कि हम आपकी क्या सेवा कर सकते हैं? मैंने कहा, बारह दिन तुम कहां थे? अफीम लेते हो? चरस पीते हो? बारह दिन तुम कहां थे? तुम्हारी सरकार कहां थी? तुम्हारा राजदूत कहां था? उस आदमी ने जो उत्तर दिया वह यह था कि हम निरीक्षण कर रहे थे कि क्या हो रहा है। मैंने कहाः तुम निरीक्षण करते जब तक कि मैं मर जाता। तुम मेरी लाश से पूछने आते कि हम क्या सेवा कर सकते हैं। जाओ और कह दो अपने राजदूत से और कह दो अपने प्रधानमंत्री से कि तुम्हारी सेवा की मुझे कोई जरूरत नहीं है। हां, तुम्हें कभी कोई जरूरत पड़े मेरी सेवा की तो मैं हमेशा तैयार हूं।
मैं इस सरकार को एक बचकानी, अप्रौढ़, अपरिपक्व सरकार कहने को मजबूर हूं। इतने बड़े राष्ट्र को, जहां नब्बे करोड़ की आबादी हो, इन बच्चों के हाथ में छोड़ देना खतरे से खाली नहीं है। ये कोई दीवाली के पटाखे नहीं हैं। यहां पूरे देश की जिंदगी और मौत का सवाल है। मैं चाहता हूं, देश समझदार लोगों के हाथ में जाए। मैं चाहता हूं, देश में कोई राजनैतिक पार्टी न हो, कोई जरूरत नहीं है राजनैतिक पार्टी की। जरूरत है समझदार लोगों की जिनको हम चुन कर भेजें और जो सामूहिक रूप से निर्णय ले सकें इस देश के भविष्य के लिए।

मैं अराजकवादी हूं।
राजनैतिक पार्टियां सिर्फ शोषण करती हैं। पांच साल एक पार्टी शोषण करती है, तब तक लोग दूसरी पार्टी के संबंध में भूल जाते हैं। दूसरी पार्टी सत्ता में आ जाती है, पांच साल तके शोषण करती है, तब तक लोग पहली पार्टी के संबंध में भूल जाते हैं। यह एक बहुत मजेदार खेल है। कबड्डी खेल रहे हैं बेटे और रेफरी भी कोई नहीं है।

प्रश्नः आपकी योग-साधना का जो तरीका रहा है, उसमें शारीरिक संपर्क का
एक खास महत्व रहा है। जैसा कि पहले भारत में आप चलाते थे, रजनीशपुरम के बारे में मुझे पता नहीं। अगर वह तरीका फिर रहेगा तो जो नया खतरा पैदा हो गया है एड्स का, उसको देखते हुए योग-साधना के तरीके में कोई बदलाव आप लाने की सोच रहे हैं?

एड्स की बीमारी धार्मिक बीमारी है। इसका जन्म आश्रमों में, मोनेस्ट्रीज में और उन स्थानों पर हुआ जहां धर्मगुरु लोगों को समझा रहे थे--ब्रह्मचर्य। ब्रह्मचर्य बिल्कुल ही अस्वाभाविक है। सिर्फ ब्रह्मचारी होने का एक ही उपाय है और वह है प्लास्टिक सर्जरी। सिर्फ नपुंसक ब्रह्मचारी हो सकता है और कोई भी नहीं। और अब भी ब्रह्मचर्य का शिक्षण जारी है। महात्मा गांधी जैसे लोग लिखते हैंः ब्रह्मचर्य ही जीवन है। और जीवन के अंत में, सत्तर साल की उम्र में समझ में आता है कि नहीं, ब्रह्मचर्य ही जीवन नहीं है और एक नग्न स्त्री के साथ सोना शुरू कर देते हैं।
शारीरिक संबंध स्वाभाविक है, अगर उन्हें स्वाभाविक रखा जाए तो एड्स
का कोई खतरा नहीं है। जंगलों में अब तक किसी जानवर में एड्स नहीं पाई गई। लेकिन अजायबघरों में जानवरों में भी एड्स की बीमारी पैदा हो जाती है। क्योंकि अगर नर ही नर हैं, मादा नहीं है तो बंदरों में इतनी अक्ल है, जितनी तुम्हारे भिक्षुओं में है, तुम्हारे संन्यासियों में है। कोई रास्ता खोजना ही पड़ेगा। भोजन तुम करोगे... और तुमसे कोई अगर कहे कि पेशाब करना मना है तो तुम मुश्किल में पड़ोगे। पानी तुम पीओगे, पेशाब का क्या करोगे? चोरी- छिपे कोई रास्ता खोजोगे, अपने को धोखा दोगे और समाज को धोखा दोगे।
भारत में एड्स की बीमारी अगर फैलेगी तो तुम्हारे धर्मगुरुओं के द्वारा। पश्चिम में भी उन्हीं के द्वारा फैल रही है, जोर से फैल रही है। स्त्रियों और पुरुषों को अलग कर दो, लेकिन तुम्हारे भीतर जो वीर्य ऊर्जा पैदा होती है, उसका क्या करोगे? तुम्हारे वीर्य की थैली एक सीमा रखती है, उसके बाद... उसके बाद कोई भी अप्राकृतिक, कोई भी विकृत रूप लेगी या तो स्वप्नदोष होगा तुम्हें।
महात्मा गांधी को सत्तर साल की उम्र में भी स्वप्न दोष होते थे, लेकिन
हम ऐसे अंधे हैं कि सोच भी नहीं सकते। महात्मा गांधी ईमानदार आदमी थे। मुझे उनकी ईमानदारी पर कोई भी शक नहीं है। लेकिन सत्तर साल में भी अगर स्वप्नदोष होता है तो इसका अर्थ है कि तुम्हारे हाथ में नहीं है बात। भूख लगती है, तुम्हारे हाथ में नहीं है। प्रकृति ने जो भी जरूरी है, उसे तुम्हारे हाथ में नहीं छोड़ा है। नहीं तो तुम कभी के खत्म हो गए होते। श्वास लेते हो--तुम्हारे हाथ में नहीं है। नहीं तो रात में भूल जाते कि श्वास लेना कि नहीं। सड़क की भीड़-भाड़ में भूल जाते कि श्वास लेना कि नहीं। तुम्हारे भीतर जो वीर्य की ऊर्जा स्त्री या पुरुषों के भीतर पैदा होती है, वह तुम्हारे खून से पैदा होती है। अगर तुम चाहते हो कि वह पैदा न हो तो खून पैदा नहीं होना चाहिए। जड़ों तक जाना पड़ेगा। और खून पैदा न हो तो भोजन बंद करना होगा। तो ब्रह्मचारी ही होना है तो जाओ और लटक जाओ किसी झाड़ से बांध कर रस्सी अपनी गर्दन में और लिख लेना एक तख्ती कि मैं ब्रह्मचारी हूं।
एड्स को रोकने का एकमात्र उपाय है कि स्त्री और पुरुष के बीच हमने जो वैमनस्य, जो दुश्मनी हजारों साल में पैदा की है, उसे अलग कर लें। अगर हम उसे अलग कर सकते हैं तो एड्स का कोई सवाल नहीं है। पुरुष और स्त्री के संभोग से एड्स पैदा नहीं होता। पुरुष और पुरुष के संभोग से एड्स पैदा होता

है। और वैसा पुरुष अगर स्त्री से संभोग करे तो स्त्री को भी एड्स की बीमारी दे देता है।
और एड्स की बीमारी आखिरी बीमारी है। अब तक ऐसी कोई बीमारी जानी नहीं गई, क्योंकि इसका कोई इलाज नहीं है। वैज्ञानिक कहते हैं कि दस वर्षों तक तो हम नहीं सोच सकते कि कोई इलाज खोजा जा सकता है। और इतने जोर से फैल रही है बीमारी, कि न तो तुम किसी से कह सकते हो कि तुम एड्स के बीमार हो, न तुम डाक्टर के पास जा सकते हो, न डाक्टर चाहता है कि तुम उसके पास आओ। कृपा करो, फीस ले लो और घर जाओ। न कोई अस्पताल भर्ती करने को राजी है, क्योंकि केवल शारीरिक संबंध से ही एड्स एक-दूसरे में नहीं फैलता। पसीने से भी फैलता है। थूक से भी फैलता है। आंसुओं से भी फैलता है।
सिर्फ दुनिया में एक कौम है एस्किमोज की, जिन्होंने कभी प्रारंभ से
ही चुंबन नहीं लिया। और जब पहली दफा ईसाई मिशनरी एस्किमोज को बदलने पहुंचे तो उनकी हंसी का ठिकाना न रहा। वे सोच भी न सके कि ये कैसी गंदी हरकत कर रहे हैं? यह गंदी हरकत है। एक-दूसरे के मुंह में जीभ डालना, एक-दूसरे के थूक में थूक मिलाना, जरा सोचो तो? और तुम ऐसा रस ले-ले कर... लेकिन थूक में एड्स के वायरस होते हैं। शरीर से जो भी चीज बाहर निकलती है, उसमें एड्स के वायरस होते हैं।
एक ही उपाय है--सेलिबेसी, ब्रह्मचर्य गैर-कानूनी करार दिया जाए और पकड़-पकड़ कर एक-एक संन्यासी की शादी की जाए कि चलो... । अन्यथा यह भी हो सकता है कि न्युक्लियर युद्ध के पहले एड्स आदमी को मार डाले। और एड्स के बीमार को अगर पूर्ण सुरक्षित रखा जाए तो वह दो साल से ज्यादा नहीं जी सकता। यह लंबी से लंबी अवधि है। और पूर्ण सुरक्षित कैसे रखोगे? आखिर उसे काम करना पड़ेगा, लोगों से मिलना पड़ेगा।
और एड्स के बीमार की क्षमता किसी भी बीमारी से लड़ने की शून्य हो जाती है। अगर उसको सर्दी पकड़ जाए तो सर्दी भी फिर ठीक नहीं होती। बुखार आ जाए तो बुखार ठीक नहीं होता। उस पर कोई दवा काम नहीं करती। क्योंकि दवा के काम करने का ढंग है। जब हम दवा देते हैं किसी आदमी को तो उसका शरीर उस दवा का साथ देता है। उन दोनों की संयुक्त शक्ति से बीमारी अलग की जाती है। एड्स के मरीज का शरीर साथ नहीं देता। वह खोखला है। तुम दवा डालते जाओ, वह बेमानी है। तुमने नाली में डाल दी होती तो भी उतना ही असर होता, जितना तुमने इंजेक्शन लगा कर किया है।
मगर दुनिया के धार्मिक अभी भी समझाए जा रहे हैं कि ब्रह्मचर्य के बिना कोई ब्रह्म तक नहीं पहुंच सकता--ब्रह्मचर्य बिल्कुल अनिवार्य है। ये देश के दुश्मन हैं और समाज के दुश्मन हैं। इन्हें रोकना जरूरी है, और स्त्री और पुरुष को करीब लाना जरूरी है। ताकि पुरुष और पुरुष संभोग न करने लगें, ताकि स्त्रियां और स्त्रियां संभोग न करने लगें।
मैं अमरीका में था तो टैक्सास की गवर्नमेंट ने पार्लियामेंट में यह कानून पास किया कि समलिंगी संभोग गैर-कानूनी है। और दस साल की सजा कम से कम सजा है। तुम विश्वास न कर सकोगे। दस लाख लोगों के जुलूस ने विरोध किया कि यह हमारी स्वतंत्रता पर हमला है।
ब्रह्मचर्य को गैर-कानूनी करार देने की बजाय, उन्होंने होमो सेक्सुअलिटी को गैर-कानूनी करार दिया। इसके परिणाम बहुत खतरनाक हैं। इसका मतलब हुआ कि होमो सेक्सुअलिटी, समलिंगी व्यवहार अंतर्गत, भूमि के भीतर छिप जाएगा और तुम्हें पता भी नहीं चलेगा। तुम्हें यह भी पता नहीं चलेगा कि एक छोटा बच्चा रो रहा था और तुमने उसके आंसू पोंछ दिए तो तुमने करुणा का काम किया या हत्या का, क्योंकि हो सकता है कि तुम्हारे हाथ और उसके आंसू एड्स की बीमारी को पैदा कर दें।
और नवीनतम खबरें हैं कि अब बच्चे भी पैदाइश के साथ एड्स लेकर आ रहे हैं। तीन बच्चे पैदा होते ही एड्स के बीमार थे। यह सबसे भयंकर बीमारी है, जो आदमी ने मनुष्य के इतिहास में देखी है।
मेरे विचार और भी परिपक्व हो गए हैं कि मनुष्य को सहज, सरल स्वाभाविक जीवन जीना चाहिए। अन्यथा विकृति बिल्कुल स्वाभाविक है।
मैंने सुना है, एक शानदार हथिनी जंगल से गुजर रही थी और एक मुंडा संन्यासी उसके पीछे भाग रहा था। हथिनी ने पूछा कि हे मुंडे, तू क्यों मेरा

पीछा कर रहा है? उस संन्यासी ने कहाः माई, अब तुम इतनी बड़ी हो कि माई ही कहना पड़ेगा। एक ही वासना रह गई है जीवन में, उसी की वजह से संसार में भटक रहा हूं। अगर तुम जरा सहायता कर दो तो मोक्ष में आनंद लूं। हथिनी ने कहाः मैं बिल्कुल तैयार हूं, क्या सहायता चाहिए। उसने कहाः कहने में शर्म आती है। मगर यहां कोई भी नहीं है और किसी को पता भी नहीं चलेगा। न मालूम क्यों मेरे दिमाग में बार-बार यह खयाल उठता है कि हथिनी को प्रेम करने से कैसा होगा? हथिनी ने कहा प्रेम? तुम प्रेम करोगे मुझसे? ठीक है। नसेनी वगैरह लाए हो? उसने कहा, मैं ले आया हूं, म्युनिसिपल की नसेनी, उसी को लेकर तो दौड़ रहा हूं और हांफ रहा हूं। तुम मेरी यह छोटी सी इच्छा पूरी कर दो तो जन्म-जन्मांतर का चक्र छूट जाए। यह मेरे भाव से नहीं छूटता, सब देख लिया, मगर हथिनी से प्रेम नहीं किया।
और अब मैं समझता हूं कि क्यों आश्रमों में हाथी और हथिनियां रखे जाते हैं।
उसने कहाः तू जल्दी कर भैया, क्योंकि मेरी भी डेट है, मेरा बॉयफ्रेंड रास्ता देखता होगा। हे मुंडे, चढ़ अपनी नसेनी पर। मुंडा प्रेम करने में संलग्न हो गया। प्रेम क्या था, एक तरह की कसरत समझो। दंड लगा रहा था, पसीना- पसीना हुआ जा रहा था। और तभी झाड़ के ऊपर से एक नारियल गिरा, जो हथिनी के सिर पर पड़ा। हथिनी ने कहाः आह! मुंडे ने कहाः माफ करना प्रियतमे, क्या मैं तकलीफ तो नहीं दे रहा हूं? हथिनी ने कहाः तुम्हारा तो मुझे पता ही नहीं चल रहा है, तुमने शुरू भी किया या नहीं। मुंडा बोला, मैं तो बहुत पहले खत्म हो चुका। यह तो मेरे गुरु हैं, जिनका नाम गुंडा है, वे ऊपर बैठे हैं, झाड़ पर। हमारे संप्रदाय में शिष्य को मुंडा कहते हैं और गुरु को गुंडा कहते हैं। हालांकि वे ब्रह्मचर्य के बिल्कुल पक्ष में हैं, लेकिन यह अदभुत दृश्य देख कर जो कि हिंदी फिल्मों में भी नहीं दिखाई पड़ सकता, वे भी जोश में आ गए और भूल गए सब ब्रह्मचर्य, और कुछ न सूझा तो जोर से वृक्ष को ही हिलाने लगे। नारियल उनकी कृपा से तुम्हारे सिर पर गिरा।
यह गुंडों और मुंडों का समाज, इसने तुम्हें हजार तरह की बीमारियां दी हैं और मैं चाहता हूं सहज, स्वाभाविक, नैसर्गिक जीवन। जितने तुम स्वाभाविक होओगे, उतने ही ज्यादा तुम्हारे जीवन में शांति होगी, स्वास्थ्य होगा, उतनी ही संभावना है तुम्हारे लिए उस अमृत को पा लेने की, जिसकी हम सदियों से प्रतीक्षा करते रहे हैं जन्मों-जन्मों से।
तो सिवाय मेरे--और मैं दोहराता हूं, सिवाय मेरे--न तो तुम्हारा पोप, न अयातुल्ला खोमैनी, न तुम्हारे शंकराचार्य, न तुम्हारे आचार्य तुलसी, कोई भी तुम्हें एड्स से नहीं बचा सकते। एड्स से बचाने का एक ही उपाय हैः सरल बनो, सीधे बनो, नाहक सिर के बल खड़े होने की कोशिश न करो। पैर दिए हैं प्रकृति ने, उनसे ही चलो।
भारत में अभी भी एड्स का कोई बहुत प्रचार नहीं है, सिवाय सैनिकों के कालेजों में जहां लड़के और लड़कियों को अलग-अलग होस्टलों में रहने के लिए मजबूर किया जा रहा है, आश्रमों में जहां स्त्री और पुरुषों के बीच दीवाल खड़ी की जा रही है। बड़े आश्चर्य की बात है कि प्रकृति तुम्हें जो देती है, तुम उसका विरोध करते हो? फिर परिणाम भी भोगने के लिए तैयार हो जाना। अभी एड्स पश्चिम में आग की तरह फैल रही है। रोज हजारों लोग मर रहे हैं। और रोज लाखों लोग एड्स के चक्कर में आ रहे हैं। वह ईसाइयत की देन है। अभी भारत को बचाया जा सकता है। अभी बात आगे नहीं बढ़ी, अभी पैर पीछे खींचा जा सकता है। लेकिन यही मेरी तकलीफ है कि मैं सच को सच कह देता हूं तो पत्थर खाने की तैयारी अपने हाथ से कर लेता हूं। तुम सच नहीं सुनना चाहते। तुम चाहते हो कि राम-राम, राम-राम जपता रहूं और ब्रह्मचर्य सध जाए। खुद रामचंद्रजी से नहीं सधा, तुमसे क्या सधेगा? थोड़ा सोचो तो, जिनकी तुमने पूजा की है कृष्ण की, वे सोलह हजार स्त्रियों को अपने घर में बंद किए थे। अनाचार है, मगर कम से कम एड्स तो नहीं फैला!

प्रश्नः मेरा अंतिम प्रश्न है, इसके स्पेस्फिक जवाब की अपेक्षा है,
कि भारत आने के बाद अब आपका क्या कार्यक्रम है? आप कहां रहेंगे और कार्यशैली क्या होगी?

यह प्रश्न तुम्हें सूरज प्रकाश से पूछना चाहिए, जिनके घर में मैं हूं। मैं जरा जिद्दी किस्म का आदमी हूं। तय कर लूं तो इस घर को छोडूंगा ही नहीं। सूरज प्रकाश ढूंढ लें कोई घर नया।

फिर अमरित की बूंद पड़ी
तीसरा प्रवचन

मेरी दृष्टि सृजनात्मक है

प्रश्नः मोरारजी सरकार से लेकर राजीव सरकार तक के आप केवल आलोचक ही बने रहे हैं। किंतु इस देश की समस्याओं को सुलझाने के लिए आपके पास क्या कोई विशेष दृष्टिकोण या उत्तर है?

इस देश की समस्याएं इस देश से बड़ी हैं। और आलोचना नकारात्मक नहीं है।
वह समस्याओं को सुलझाने का विधायक रूप है। जैसे कि कोई सर्जन किसी के कैंसर का आपरेशन करे, तो क्या तुम उस आपरेशन को नकारात्मक कहोगे? दिखता तो नकारात्मक है, लेकिन वस्तुतः विधायक है। और इसके पहले कि कोई पुरानी इमारत गिरानी हो, नई इमारत खड़ी करनी हो, तो लोगों को सजग करना जरूरी है कि अब पुरानी इमारत के नीचे रहना खतरनाक है। वह जीवन को नष्ट कर सकती है। मैंने अपने जीवन में किसी की कोई आलोचना नहीं की। लेकिन मजबूरी है
पैर में कांटा गड़ा हो तो दूसरे कांटे से उसे निकालना पड़ता है। दूसरा कांटा दुश्मन नहीं है दोस्त है। हालांकि वह भी कांटा है। तो पहली बात तो मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि मैं कोई आलोचक नहीं हूं। मेरी दृष्टि सृजनात्मक है। लेकिन बनाने के पहले मिटाना पड़ेगा ही। और हजारों वर्ष की सड़ी-गली परंपराएं, अंधविश्वास जो हमारी छाती पर सवार हैं और इस देश को आगे नहीं बढ़ने देते, जब तक हम उन्हें अलग नहीं कर देते तब तक इस देश में कोई विधायक, कोई सृजनात्मक, कोई निर्माण नहीं हो सकता।
समस्याएं इतनी हैं कि उनकी गिनती करनी भी मुश्किल है। लेकिन मूल समस्याओं पर मैं चर्चा करूंगा। लेकिन ध्यान रहे, वह आलोचना नहीं है, नकारात्मक नहीं है। "नहीं" में मेरा विश्वास नहीं है। मैं तो "हां" को आस्तिकता कहता हूं।
पहली समस्या है इस देश के सामने, और वह है, इसके अतीत से इसे मुक्त करना। और तुम्हारे राजनेता यह नहीं कर सकते। क्योंकि राजनेता को उन लोगों से भीख मांगनी है, वोट की, जिनका कि यह अतीत है। यूं समझो, बच्चा पैदा होता है तो उसका भविष्य होता है, कोई अतीत नहीं होता। जवान होता है तो उसका वर्तमान होता है। बूढ़ा होता है तो उसका केवल अतीत होता है। जिस कौम का केवल अतीत शेष रह गया हो, वह बूढ़ी हो गई है, मरणासन्न है; उसकी अरथी किसी भी दिन उठ सकती है।
उदाहरण के लिए, महात्मा गांधी चाहते थे देश में रेलगाड़ियां न हों, टेलीफोन न हो, टेलिग्राफ न हो, बिजली न हो, मशीनें न होंः टेक्नालॉजी का कोई भी आयाम न हो। उनके लिए दुनिया का इतिहास चरखे पर रुक गया था। और चरखे से यह कौम जी नहीं सकती। अगर एक आदमी आठ घंटे रोज, सतत चरखे पर सूत काते, तो केवल अपने लिए--पत्नी के लिए नहीं, बच्चों के लिए नहीं, मां-बाप के लिए नहीं, सिर्फ अपने लिए--साल भर के लिए कपड़े पैदा कर सकता है। लेकिन कपड़े तुम खा नहीं सकते, और न कपड़े तुम पी सकते हो। और अगर आठ घंटे केवल चरखा ही कातना पड़े, तो तुम घनचक्कर हो। भोजन कहां से जुटाओगे? पत्नी और बच्चों के लिए वस्त्र कहां से लाओगे? मकान कैसे बनाओगे? तो मैंने आलोचना की, कि जब तक यह देश गांधी के फांसी के फंदे से मुक्त नहीं होता, इसका कोई भविष्य नहीं है। दुनिया बहुत आगे जा चुकी है। एक छोटी सी मशीन उतना काम कर सकती है, जितना हजार लोग नहीं कर सकते। और मशीन की खूबी है कि थकती नहीं। शिफ्ट भी बदलनी नहीं पड़ती। चौबीस घंटे भी उसे काम में लगाया जा सकता है। और मशीन की और भी खूबी है कि वह मरती नहीं। अगर कोई अंग खराब हो जाए तो बदला जा सकता है। लेकिन गांधी हठाग्रही थे। और उनके शिष्य, जिनके हाथ में यह देश आजादी
के बाद इन चालीस सालों में रहा है, इतनी छाती नहीं रखते कि जब गांधी ही चले गए, तो उनके इस बचकाने दृष्टिकोण को भी विदा देने की जरूरत है।
पहली बात है कि इस मुल्क को बड़ी से बड़ी, नवीन से नवीन टेक्नालॉजी, तकनीकी ज्ञान में विकसित करना है। जो कि कठिन नहीं है। जो कि बहुत आसान

है। मगर दुविधा यह है कि पूजा गांधी की होगी तो टेक्नालॉजी को लाना इस देश में मुश्किल है।
जब गांधी मरे, तो इस देश की आबादी केवल चालीस करोड़ थी। आज इस देश की आबादी नब्बे करोड़ है। हालात बिगड़ते ही चले गए हैं। लेकिन कोई माई का लाल यह हिम्मत भी नहीं करता, कि इस बात को साफ करे मुल्क के सामने, कि ब्रह्मचर्य से इस देश की आबादी को रोका नहीं जा सकता।
एक तरफ टेक्नालॉजी है, जो हाथों में जंजीर है; और दूसरी तरफ बढ़ती हुई आबादी है, जो मौत का पैगाम है। जो लोग विशेषज्ञ हैं आबादी के बढ़ने और गणित के, उनका खयाल था कि इस सदी के पूरे होते-होते भारत की आबादी सौ करोड़ होगी। लेकिन नवीनतम खोजें ये हैं कि आबादी सौ करोड़ नहीं होगी, एक सौ अस्सी करोड़ होगी। जो देश चालीस करोड़ की आबादी से भूखा रहा है, परेशान रहा है, तुम कल्पना कर सकते हो कि एक सौ अस्सी करोड़ की आबादी मौत को निमंत्रण है। लेकिन राजनीतिज्ञ यह बोल नहीं सकता। जानता भी हो तो भी बोल नहीं सकता। राजनीतिज्ञ को मुखौटे ओढ़ने पड़ते हैं--मुखौटों पर मुखौटे। क्योंकि उन्हें जिन लोगों से वोट लेनी है, उनके विश्वासों को कोई चोट न पहुंचे।
भारत सदियों से सोचता है कि बच्चे भगवान की देन हैं। अब यह धारणा छोड़नी होगी। बच्चे तुम्हारी करतूत हैं, किसी भगवान की देन नहीं हैं। जरा सोचो, अगर बच्चे भगवान की देन होते, उसकी अनुकंपा और प्रेम होते, तो बढ़ती आबादी जीवन को और भी प्रेम, और भी सौहार्द, और भी आनंद से भर देती। तो दो ही निर्णय लेने होंगेः या तो भगवान तुम्हारा शैतान है और या फिर कोई भगवान नहीं है। एक साधारण आदमी भी देख सकता है हमारी दरिद्रता को और भगवान त्रिकालज्ञ हैं, वे तीनों काल को जानते हैं, उनको यह दिखाई नहीं पड़ता कि एक सौ अस्सी करोड़... सड़कें लाशों से पट जाएंगी। उनको मरघट तक पहुंचाने वाले लोगों की कमी हो जाएगी। उनके लिए कफन जुटाना भी मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि गांधीवाद में अगर चरखा चलता रहा तो कफन को पैदा करने की कोई जगह नहीं है।
तो पहली बात मैं कहना चाहता हूंः "भारत को अपने अतीत से मुक्त होना है
और उसको अपनी आंखें भविष्य की ओर लगानी हैं।" अगर भगवान या प्रकृति को अतीत में इतना मोह था, तो उसने तुम्हारी आंखें आगे की तरफ नहीं, खोपड़ी के पीछे की तरफ दी होतीं, ताकि तुम पीछे की तरफ देख सको। उसने तुम्हें आंखें आगे की तरफ दी हैं।
राजनैतिक विचारक क्यों हिम्मत नहीं कर पाते यह कहने की, कि देश में संतति-नियमन होना चाहिए? डर, भय। यह जनता मानती है कि बच्चे भगवान की देन हैं, तो फिर उस राजनीतिज्ञ को वोट नहीं मिलने वाले हैं, जो इस देश में संतति-निग्रह के लिए आग्रह करे। इसलिए सब देख रहे हैं और चुप हैं।
कम से कम तीस वर्षों तक भारत में संतति-निग्रह की अनिवार्यता होनी चाहिए। आखिर फायदा भी क्या है इस दुनिया में उन बच्चों को लाने का--जिनको तुम भोजन न दे सकोगे, कपड़े न दे सकोगे, शिक्षा न दे सकोगे? बीमार होंगे तो दवा न दे सकोगे।
लेकिन मुसलमान कुरान की तरफ देखता है। मोहम्मद ने नौ शादियां कीं, तो
कम से कम मुसलमान को चार शादियों का हक दिया, गौरव दिया। यह समझ लेने जैसा है, कि एक औरत के अगर नौ पति हों तो कोई हर्ज नहीं क्योंकि बच्चा वह एक ही पैदा कर सकेगी। लेकिन अगर एक आदमी की नौ औरतें हों तो खतरा है। वह बच्चे नौ पैदा कर सकता है। लेकिन मुसलमान इस जिद्द पर है कि यह उसका धार्मिक उसूल है।
और मोहम्मद ने इस उसूल को किसी धार्मिकता के कारण कुरान में जगह न दी थी। मोहम्मद की सारी जिंदगी तलवार, नंगी तलवार को हाथ में लेकर गुजरी। स्वभावतः आदमी मर जाते थे, स्त्रियां बच जाती थीं। अनुपात बिगड़ गया। स्त्रियां चार गुनी ज्यादा थीं। और अगर यह नियम पाला रखा जाता, कि एक व्यक्ति एक ही स्त्री से विवाह करे, तो तीन स्त्रियां क्या करेंगी? शिक्षा तो दूर रही, बुरका भी नहीं उठा सकतीं। ये तीन औरतें वेश्याएं बन जाएंगी।
तो अच्छा है कि एक-एक आदमी को चार-चार औरतों की सहूलियत दी जाए। और जब तुम सहूलियत देते हो, तो अजीब खतरे पैदा होते हैं।

अभी इस सदी में जब भारत स्वतंत्र हुआ, तो निजाम हैदराबाद की पांच सौ औरतें थीं--जब कि दुनिया में आदमी और औरतों का संतुलन बराबर है। और एक आदमी पांच सौ औरतों पर कब्जा कर ले, तो वे जो चार सौ निन्यानबे आदमी बिना औरतों के रह गए, वे क्या करेंगे? विकृति फैलेगी, अनैतिकता फैलेगी, दुराचार फैलेगा।
मगर निजाम हैदराबाद पर बहुत नाराज मत होना। जिन्होंने दुनिया के सब रिकार्ड तोड़ दिए हैं, वे हैं तुम्हारे पूर्ण अवतार कृष्ण! उनकी सोलह हजार स्त्रियां थीं। और इन सोलह हजार स्त्रियों में सिर्फ एक स्त्री विवाहित स्त्री थी--रुक्मणी। बाकी दूसरों की स्त्रियां थीं। जो स्त्री पसंद आ गई, वह जबरदस्ती कृष्ण के घर पहुंचा दी गई। अंग्रेजी में कहावत हैः माइट इ.ज राइट। कृष्ण के पास ताकत थी। वह किसी गरीब आदमी की औरत को ले जाए, तो वह इनकार भी नहीं कर सकता। उस औरत के बच्चे भी थे छोटे, पति भी था, बड़े-बुजुर्ग भी थे, वह घर सूना हो गया, उस घर में अंधेरा हो गया। और फिर भी तुम कृष्ण को पूर्ण अवतार कहे चले जाओगे? और जिस आदमी में इतनी भी आदमियत नहीं है... पूर्ण अवतार होना तो बात दूर।
भारत को अपने अतीत से मुक्त होना है, यह पहली बात है, तो हम नये कदम उठा सकते हैं। नये कदमों में पहला कदम होगाः संतति-निग्रह। और इस सड़ी-गली दुनिया में जहां आदमी सिवाय हत्या करने के और कुछ भी नहीं करता... तीन हजार वर्षों में पांच हजार युद्ध आदमी ने किए हैं। और अब अंतिम युद्ध की तैयारी है। अगर तुम्हें जरा भी प्रेम है, तो तुम ऐसी दुनिया में अपने बच्चे को नहीं लाना चाहोगे।
अगर तीस वर्षों तक भारत संपूर्ण संतति-नियमन कर ले, तो इसकी आबादी उस सीमा पर आ जाएगी जहां हम खुशहाल हो सकते हैं। मगर यह मैं तुमसे कह सकता हूं क्योंकि मैं कोई राजनीतिज्ञ नहीं हूं। और मुझे तुमसे कोई वोट नहीं लेने हैं। हां, तुम चाहो तो मुझे पत्थर मार सकते हो। वह मेरा सौभाग्य है। लेकिन राजनीतिज्ञ धंधे में है। उसे वही कहना पड़ता है जो तुम पसंद करते हो। और तुम्हारी पसंदगियां बड़ी सड़ी-गली हैं, बहुत पुरानी हैं, बहुत जराजीर्ण हैं। तुमने उन पर कभी पुनर्विचार भी नहीं किया है।
गौतम बुद्ध के जमाने में सारी दुनिया की आबादी दो करोड़ थी--सारी दुनिया की आबादी दो करोड़ थी। और अगर लोग खुशहाल थे, और अगर लोग अपने मकानों पर ताले नहीं लगाते थे, समझ में आती है बात। क्या ताला लगाना? इतनी संपन्नता थी। खास कर इस देश में, जो कि देश कम है और एक महाद्वीप ज्यादा है। हर मौसम है। हर तरह की सुविधा है। ठंडी से ठंडी जगह पा सकते हो, गर्म से गर्म जगह पा सकते हो। सूखे रेगिस्तान हैं, और चेरापूंजी जैसी जगह हैः जहां पांच सौ इंच वर्षा होती है, घर के बाहर भी नहीं निकल सकते।
भारत अपने आप में एक पूरी दुनिया है। इसकी संपन्नता का कोई हिसाब न था। गलत नहीं थे वे लोग, जिन्होंने इसे सोने की चिड़िया कहा। लोग खुश थे, लोग प्रसन्न थे। यह तो सिर्फ एक उपमा है कि यहां दूध और दही की नदियां बहती थीं। दूध और दही की नदियां नहीं बहतीं। मगर सूचक है इस बात का कि इतना था कि अगर हम दूध और दही की नदियां भी बहाते, तो कोई हर्ज न होता, कोई नुकसान न होता। लेकिन मूल कारण था, आबादी का बहुत थोड़ा होना। बड़ा देश, बड़ी भूमि, उपजाऊ भूमि।
अगर इस देश के भाग्य को फिर से सोने की चमक देनी है, और अगर इस देश के पत्थरों को फिर हीरों में बदलना है, तो हमें थोड़ी हिम्मत बरतनी होगी। लेकिन मजा यह है कि ईसाई पादरी, कार्डिनल, पोप इस देश में आएगा और लोगों को समझाएगा कि संतति-नियमन पाप है। और इस देश के शंकराचार्य, इस देश के जैनाचार्य उससे सहमत हैं। क्योंकि उन सबकी चिंता कुछ और है। ईसाई चाहता है, यह देश और भी और गरीब होता जाए।
क्योंकि जितने लोग गरीब होते हैं, उतने ही लोग ईसाई होते हैं। उन्हें ईसाई होना ही पड़ता है। और शंकराचार्य और जैनाचार्य भी भयभीत हैं, कि अगर यूं ही चलता रहा, तो हमारी संख्या कम हो जाएगी। यह देश कल ईसाइयों का देश बन सकता है। तो बच्चे पैदा करो।
तो पहली बात मैं कहना चाहता हूं, कि अगर तुम्हें बच्चों से प्रेम है,
तो बच्चे पैदा मत करो। एक तीस साल के लिए संतति-नियमन कर लो। जो लोग आबादी

को कम करना चाहते हैं--जैसे महात्मा गांधी, विनोबा भावे, वे भी संतति-नियमन के खिलाफ हैं। वे कहते हैं, ब्रह्मचर्य धारण करो। और क्या कोई बता सकता है कि महात्मा गांधी ने कितने लोगों को ब्रह्मचारी बना दिया? खुद महात्मा गांधी का व्यक्तिगत निजी सचिव एक लड़की को ले भागा!
ब्रह्मचर्य अप्राकृतिक है। और जो काम एक छोटी सी गोली कर देती हो, उस काम के लिए नाहक सिर के बल खड़े होना, और शीर्षासन करना निहायत बेवकूफी है। और कितनी ही कोशिश करो, प्रकृति के नियमों के विपरीत तुम जा नहीं सकते, जब तक कि विज्ञान का सहारा न हो। और आज विज्ञान का पूरा सहारा उपलब्ध है। कल तक तो सिर्फ औरतों के लिए संतति-नियमन के लिए गोलियां उपलब्ध थीं, आज आदमी के लिए भी उपलब्ध हैं।
इस देश की आबादी इस देश की दुश्मन है। जो कि बड़ी सरलता से हल की जा सकती है। जरा सी बुद्धिमत्ता।
अमरीका में जिस कम्यून को मैंने निर्मित किया था, उसमें पांच हजार संन्यासी थे। ढाई हजार जोड़े। लेकिन पांच वर्षों में एक बच्चा पैदा नहीं हुआ। और न तो बंदूकें इस्तेमाल की गईं, और न जबरदस्ती पुलिस खड़ी की गई, सिर्फ समझाने की बात थी।
दूसरी बात, भारत दो हजार सालों से गुलाम रहा है। कभी मुगल, कभी तुर्क, कभी हूण, कभी मुसलमान, कभी अंग्रेज। दो हजार वर्ष लंबा समय है। दो हजार साल की गुलामी ऐसी बैठ गई है दिमाग में कि हटाए भी नहीं हटती। इस गुलामी को दिमाग से हटा देना जरूरी है। क्योंकि यह गुलामी ही नहीं, इस गुलामी ने बहुत कुछ तुम्हारे दिमाग में कूड़ा-कचरा भर दिया है, जो कि इस गुलामी के गिरने के साथ ही जाएगा। यूं देखने को तो तुम आजाद हो गए हो--बस देखने को। भीतर की गुलामी में कोई फर्क नहीं है।
और गुलामी एक जंजीर है, जो मनुष्य की प्रतिभा को रोकती है।
अंग्रेजों ने तीन सौ वर्षों में इस देश में स्कूल खड़े किए, कालेज बनाए, युनिवर्सिटियां बनाईं। इसलिए नहीं कि तुम शिक्षित हो जाओ; बल्कि इसलिए कि तुम शिक्षित होने से रह जाओ। और सारी शिक्षा की व्यवस्था यूं की, कि ये स्कूल, कालेज और युनिवर्सिटियां केवल फैक्ट्रियां बन गईं क्लर्कों को पैदा करने की। क्या तुम सोच सकते हो, भारत जैसा विशाल देश, जो इस सदी के अंत में दुनिया का सबसे बड़ा देश होगा--संख्या की दृष्टि से--वहां केवल अब तक तीन नोबल प्राइज मिले हैं? और यहूदी, जिनकी संख्या बहुत नहीं है--भारत में तो न के बराबर है--वे हर वर्ष चालीस प्रतिशत नोबल प्राइज उपलब्ध करते हैं।
क्या होगी बात? क्या हमारे मस्तिष्क बिल्कुल खाली हो गए हैं, खोखले हो
गए हैं? उन्हें खोखला किया गया है। और खोखला करने की बड़ी वैज्ञानिक विधियां उपयोग की गई हैं। कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई जैन है, कोई सिक्ख है। और अंग्रेजों की हमेशा यह चेष्टा रही कि यह देश कभी एक न हो पाए। यह आपस में ही लड़ता रहे। इसकी सारी ऊर्जा आपस में लड़ने में ही नष्ट होती रहे।
पहला हमला हुआ, कि जिन्ना न तो कभी जेल गया, न कभी उस पर कोई लाठी पड़ी,
और फिर भी इस मुल्क को तीन हिस्सों में बांटने का कारण बन गया। क्योंकि अंग्रेजों ने एक बात इस देश के मन में बहुत गहराई से भर दी है, जो इसके पहले नहीं थी। सिक्खों का गुरुग्रंथ देखोः उसमें हिंदू फकीरों के वचन हैं, उसमें मुसलमान फरीद के वचन हैं। हमारी निष्ठा थी अब तक सत्य के प्रति। एक ही गुरुग्रंथ में, सारे धर्मों के लोगों ने, जिन्होंने भी सत्य वचन बोला है, संगृहीत है। लेकिन अंग्रेजों ने धीरे-धीरे दीवालें खड़ी कीं। हिंदुस्तान की आजादी के पहले विन्सटन चर्चिल ने कहा था--तब तक वे प्रधानमंत्री नहीं थे--कि एटली भूल कर रहे हैं। भारत की आजादी भारत को छिन्न-भिन्न कर देगी, और भारत की आजादी एक अराजकता बन जाएगी। और चर्चिल कितना भी चोर रहा हो राजनीति में, लेकिन उसका यह वक्तव्य तो सही है। आजादी क्या आई, मुसीबत आई। करोड़ों लोग घर बेघर हो गए। उनकी पत्नियों पर बलात्कार किए गए। हजारों लोगों को जिंदा जलाया गया, काटा गया। और यह थी गांधी की अहिंसा की लंबी शिक्षा, जिसका अंतिम परिणाम हिंसा में हुआ। न केवल मुल्क के साथ हिंसा में हुआ, बल्कि एक हिंदू ने ही गांधी को भी गोली मारी।

तो मैं चाहूंगा कि इस देश में मनुष्य रहें। हिंदू, मुसलमान, ईसाई, और सिक्ख--ये तुम्हारी व्यक्तिगत और निजी बातें हैं। तुम गुरुद्वारा जाओ, यह तुम्हारी मौज है। और तुम मस्जिद जाओ, यह तुम्हारी मौज है। लेकिन इसमें झगड़ा क्या है? तुम कुरान पढ़ो, यह तुम्हारी मौज है। तुम गीता में रस लो, तुम उपनिषदों में डुबकी लगाओ--इसमें हर्ज क्या है? लेकिन इसमें झगड़ा कहां है? इस देश के युवक को कम से कम यह समझ लेना चाहिए कि वह सिर्फ आदमी है। आदमी पहले है फिर कुछ और है। फिर तो उसकी निजी बातें हैं कि तुम कौन सी मार्का सिगरेट पीते हो, इसमें कोई झगड़ा नहीं होता। तुम किस फिल्म स्टार को पसंद करते हो, यह तुम्हारी पसंदगी है।
धर्म बिल्कुल निजी व्यक्तिगत बात है। इसका समूह से कोई संबंध नहीं।
तुम्हें जहां रस मिलता है, तुम्हें जहां प्राण मिलते हैं, जहां तुम्हें शांति मिलती है, वह तुम्हारा द्वार है। लेकिन दूसरे को उस द्वार से मत घसीटो।
इस देश की अधिक ऊर्जा और शक्ति आपस में लड़ने में व्यतीत हो जाती है।
वही शक्ति इस देश को लहलहाते खेतों से भर सकती है। लेकिन वही शक्ति इस देश को खून से भर देती है। जो अपने थे, जो अपने हैं, हम उन्हें भी काटने में फिर चिंता नहीं करते हैं। फिर हम भूल जाते हैं कि हम आदमी हैं, फिर हम जानवर की तरह व्यवहार करते हैं।
मेरे सुझाव सीधे और साफ हैं। धर्म को व्यक्तिगत घोषित किया जाना चाहिए। धर्म कोई संगठन नहीं होना चाहिए, हर आदमी की मौज होनी चाहिए। और यह भी हो सकता है कि आज तुम्हें गुरुद्वारा जाना पसंद हो, और कल तुम्हें मस्जिद की अजान पढ़ना आनंद देने लगे, तो कोई हर्ज तो नहीं है। सब मकान हैंः गुरुद्वारे भी, मस्जिदें भी, मंदिर भी, चर्च भी। सब हमारे हैं। और जहां से तुम्हें हीरे मिल सकें, चुन लो। और जहां से तुम्हें सत्य की थोड़ी सी भी झलक मिलती हो, आत्मसात कर लो। लेकिन बजाय इसके हम एक-दूसरे की गर्दन के प्यासे हैं। यह थोड़ी सी ही समझ की बात है। मत पूछना कभी किसी से कि तुम्हारा धर्म क्या है?
धर्म तो एक ही हैः और वह धर्म है, अपने को इस विराट विश्व की चेतना के साथ एक कर लेना। तुम कैसे करते हो एक, यह तुम्हारी मर्जी है। तुम किस राह चलते हो, किन सीढ़ियों पर चढ़ते हो, यह तुम्हारी मर्जी है। मत कहना भूल कर भी कि मेरा धर्म! तुम धर्म के हो सकते हो, धर्म तुम्हारा नहीं हो सकता। धर्म कोई चीज नहीं है, कि तुम उस पर ठप्पा लगा दो, और अपने नाम का निशान लगा दो, और हस्ताक्षर कर दो, कि यह मेरा धर्म है। और जिस दिन तुम यह करते हो--यह मेरा धर्म, उस दिन स्वभावतः तुम्हारा अहंकार कहता है, कि मेरा धर्म ही एकमात्र असली धर्म है।
नहीं, धर्म के तुम हो जाओ। धर्म को अपना मत बनाओ। इस धर्म के गौरीशंकर
पर न मालूम कितने मार्गों से लोग चढ़े हैं। तुम्हें जो मार्ग पसंद हो तुम पसंद कर लो। यह भी जरूरी नहीं है कि तुम्हारी पत्नी तुम्हारे मार्ग पर तुम्हारे साथ चले। और यह भी जरूरी नहीं है कि तुम्हारे बेटे तुम्हारे मार्ग पर चलें।
धर्म तो एक परम स्वतंत्रता है। उससे बड़ी कोई आजादी नहीं है। तो यह हो सकता है कि पत्नी जैन मंदिर जाती हो, पति गुरुद्वारा जाता हो, बेटे मस्जिद में नमाज पढ़ते हों। यह बड़ी प्यारी बात होगी। एक घर में अगर सारे धर्मों को अंगीकार करने वाले लोग हों, तो इस देश से धर्मों के झगड़े मिटाए जा सकते हैं--जो कि हमारी व्यर्थ ताकत, हमारी शक्ति, निर्माण करने की हमारी ऊर्जा को फिजूल कर देती है, मिट्टी कर देती है।
मैं तुमसे यह भी कहना चाहूंगा, कि सदियों से तुम्हें यह समझाया गया है
कि गरीबी में कोई अध्यात्म है। अगर गरीबी में कोई अध्यात्म है, तो हमने परमात्मा को ईश्वर न कहा होता। ईश्वर का अर्थ होता हैः ऐश्वर्य। वह परम धनी है। क्या तुम सोचते हो, किसी दिन तुम ईश्वर को मिलो तो वह नंग-धड़ंग धूप में कहीं खड़े होंगे? या कि कांटों की किसी सेज पर लेटे होंगे? धर्म दरिद्रता नहीं है, धर्म जीवन की परम समृद्धि है--बाहर की भी और भीतर की भी। और उन दोनों में कोई विरोध नहीं है। रेगिस्तान में बैठ कर ध्यान करना, और अपने घर की शांति, मौन में ध्यान करना--मैं तुमसे कहूंगा, घर ही चुनना।

क्योंकि रेगिस्तान में ध्यान मुश्किल होगा। यह घर की शांति तुम्हें ज्यादा मौन देगी।
हमें यह भी कहा गया है कि धार्मिक व्यक्ति संसार को छोड़ दे, त्याग दे, भाग जाता है पहाड़ों में, गुफाओं में, रेगिस्तान में। इसका दुष्परिणाम हुआ। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि करोड़ों लोग सदियों में भागते रहे संसार से। छोड़ गए पत्नियों को, बच्चों को, बूढ़े मां-बाप को, विधवा बहन को--बिना यह सोचे कि इनका क्या होगा? ये बच्चे भीख मांगेंगे। और कल या परसों से ही मदर टेरेसा इनको ईसाई बनाएगी। ये लाखों संन्यासी, जो भाग गए हैं घर छोड़ कर-- भगोड़े हैं। इनकी पत्नियों का क्या होगा? या तो वे भीख मांगें, और या वेश्याएं हो जाएं। दोनों ही बातें अशोभनीय हैं।
मैं चाहता हूं तुमसे कहना कि धर्म कोई संसार का छोड़ना नहीं है। धर्म
है संसार को सुंदर बनाना। एक तरफ तो तुम कहते हो कि ईश्वर ने जगत को बनाया और दूसरी तरफ तुम्हारे महात्मा कहते हैं कि जगत को छोड़ो। तो गणित साफ हैः तुम्हारे महात्मा परमात्मा के विरोध में हैं। अगर यूं जगत को ही छोड़ना था तो बनाने की क्या जरूरत थी? और अगर जगत में होना ही पाप था, तो सारी जिम्मेवारी ईश्वर की है, तुम्हारी नहीं। और नरक में अगर कोई भी एक आदमी पड़ेगा तो तुम्हारा ईश्वर पड़ेगा। क्योंकि उसने ही जगत बनाया, तुम्हें वासनाएं दीं, आकांक्षाएं दीं। तुम तो बिल्कुल निर्दोष हो। तुम तो उसके हाथ की कठपुतली हो। अगर सजा भी मिलेगी तो उसी को मिलनी चाहिए।
जॉर्ज गुरजिएफ इस सदी का एक बहुत महत्वपूर्ण व्यक्ति था। ठीक-ठीक उसने यही वचन लिखा है कि सारे महात्मा परमात्मा के विरोध में हैं। जब पहली दफा मैंने पढ़ा, एक झटका लगाः यह आदमी क्या कह रहा है? लेकिन जब मैंने समझा, तो पाया कि वह बात तो ठीक ही कह रहा है। परमात्मा जगत को बनाए और महात्मा जगत को छोड़ने की बातें करें। निश्चित ही विरोध है।
अगर मानना ही है तो परमात्मा को मानना। जगत को और सुंदर बनाओ। जैसे तुम पैदा हुए थे, मरते वक्त जगत को उससे ज्यादा सुंदर छोड़ना है; तो तुमने परमात्मा की सेवा की। भला तुम किसी मंदिर गए या नहीं गए, कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन तुमने परमात्मा के मंदिर में दो नये फूल उगा दिए, तुमने परमात्मा के संसार में थोड़ी सुगंध ला दी, तुमने परमात्मा के संसार को अपने जीवन की प्रतिभा दान कर दी।
इस देश को बदलना बहुत कठिन नहीं है। इस देश को केवल दस वर्षों के भीतर इसकी पुरानी गरिमा वापस दिलाई जा सकती है। क्योंकि इस देश ने अपनी प्रतिभा खो नहीं दी है, सिर्फ राख उसके अंगारों पर जम गई है, जो उड़ा देनी है।

प्रश्नः अननोएबल (अज्ञेय) की ओर आपकी यात्रा कैसी होगी? आप कुछ नये स्कूल, कम्यून स्थापित करना चाहेंगे क्या?

नहीं। जो कम्यून, जो स्कूल मैंने कायम किए थे, वे केवल प्रयोग थे इस बात को जानने के कि मैं जो कह रहा हूं वह असलियत बन सकता है या नहीं। सपने साकार हो सकते हैं या नहीं। मैंने उन सपनों को साकार होते देख लिया। अब तो मैं चाहूंगा कि यह पूरी दुनिया मेरा कम्यून बने। यह पूरी दुनिया ही उस रहस्य, उस विस्मय के जगत में प्रवेश करे, जिसके लिए कि हम पैदा हुए हैं, जो कि हमारी नियति है। इसलिए अब अलग-अलग कम्यून और स्कूल... ।
वे प्राथमिक प्रयोग थे, वे सफल हुए हैं। उनसे मैंने वे सूत्र पा लिए हैं कि कैसे सारी दुनिया को बदला जा सकता है। अगर मैं कम्यून और स्कूल ही बनाता रहूं, तो बड़ी छोटी बात होगी। क्यों न हम इस सारी दुनिया को एक विश्वविद्यालय बना लें, जहां हर आदमी रहस्य की यात्रा करे और हर आदमी उस अज्ञात की ओर बढ़े। अब तो मैं सारे संसार को ही अपना कम्यून बनाना चाहता हूं। अब मेरे पास ठीक-ठीक सूत्र हैं, जिन्हें मैंने ठीक कसौटी पर परख लिया है, कि वह खरा, चौबीस कैरेट सोना है।
मुझे याद आती है, मैं यूनान में था--एक छोटा सा द्वीप है यूनान का, उस
पर ठहरा हुआ था। उसके बगीचे में हजारों संन्यासी पूरे यूरोप से इकट्ठे हो गए थे। लेकिन जिस वृक्ष के नीचे मैं बैठा था, मैंने वैसा वृक्ष पहले कभी

देखा नहीं था। मैंने पूछा, कि यह वृक्ष क्या है? नाम क्या है? और मैं चकित हुआ कि मुझे बताया गया कि ग्रीक में इसका नाम कैरब है। लेकिन यह वृक्ष इस जगत में अनूठा है। क्योंकि इसका हर छोटा सा फल एक ही वजन का होता है। कैरब का फल कहीं भी पैदा हो उन फलों के वजन में कोई फर्क नहीं होता। और इसलिए कैरब दूसरी भाषाओं में कैरेट बन गया, क्योंकि सोने को तौलने का इससे ज्यादा सुंदर उपाय अतीत में नहीं था। कैरब कभी धोखा नहीं देता। इसका वजन हमेशा एक है।
इसलिए हम कहते हैं, चौबीस कैरेट सोना। वह कैरेट, कैरब वृक्ष के फलों
की इस अनूठी बात से पैदा हुआ है, कि उनका वजन हमेशा एक होता है। चाहे वे किसी भी देश में पैदा हों और किसी भी हवा में पैदा हों।
मैंने चौबीस कैरेट वे सिद्धांत परख लिए हैं। स्वभावतः परखने के लिए छोटे स्कूल, छोटे कम्यून जरूरी थे। आदमी सब एक जैसे हैं। उनकी चमड़ियों के रंग अलग हो सकते हैं, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। उनकी ऊंचाइयां, लंबाइयां भिन्न हो सकती हैं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन उसके भीतर, हर आदमी के भीतर चौबीस कैरेट सोना है। और अब मैं चाहूंगा कि सारी दुनिया को ही वे सारे सूत्र उपलब्ध करा दिए जाएं, कि क्यों भारत ही संपन्न हो? क्यों भारत ही महिमा से मंडित हो? क्यों न सारा मनुष्य मंडित हो महिमा से?
मेरी यह चेष्टा कि सारी दुनिया को ही मैं अब अपना घर समझता हूं, और हर आदमी को सिर्फ आदमी समझता हूं, मुझे एक अजीब स्थिति में खड़ा कर दिया है। सारी दुनिया के धर्म और सारी दुनिया के राजनीतिज्ञ इस षडयंत्र में शामिल हो गए हैं कि मुझे काम न करने दें। क्योंकि ईसाई डरता है कि अगर मेरी बात ईसाई सुनेगा, तो आदमी तो बन जाएगा लेकिन ईसाई न रहेगा। और हिंदू डरता है कि अगर हिंदू मेरी बात सुनेगा, तो आदमी तो बन जाएगा लेकिन हिंदू न रहेगा।
अब तो एक अकेला आदमी सारी दुनिया को बदलने के सूत्र देने की तैयारी...
और स्वभावतः दुनिया इतने खंडों में बंटी है--तीन सौ धर्म हैं सारी दुनिया में। और हर धर्म समझता है कि वही एकमात्र सच्चा धर्म है, बाकी सब थोथे हैं। और मैं यह कह रहा हूं कि आदमी सच्चा है, उसकी आदमियत सच्ची है, और उसकी आदमियत के भीतर ही परमात्मा का निवास है। वह कौन सी किताब पढ़ता है और कौन से मंदिर में जाता है, यह उसकी मौज है, यह उसका मनोरंजन है।
शायद कभी भी इसके पहले ऐसा न हुआ हो कि एक आदमी के खिलाफ सारी दुनिया
हो। लेकिन मैं इसे गौरव समझता हूं। क्योंकि जब भी एक आदमी के खिलाफ सारी दुनिया हो, तो एक बात निश्चित है कि सारी दुनिया सही नहीं हो सकती। अगर सही होती तो आज दुनिया की स्थिति और होती। और एक आदमी के खिलाफ सारी दुनिया का विरोध में होना इस बात का सबूत है कि मेरी विजय की यात्रा शुरू हो गई है। उन्होंने अपनी हार भीतर-भीतर स्वीकार कर ली है, अब वे उसे ढांकने की कोशिश में लगे हैं।

प्रश्नः वर्तमान स्थिति में आप अपने आप को कहां तक सीमित रखेंगे? पुनः एक बार रजनीशवाद दुनिया को अपनी लपेट में लेगा या आप केवल चार्वाक बन कर रह जाएंगे?

इस प्रश्न में दो प्रश्न छिपे हैं। पहलाः कि क्या रजनीशवाद दुनिया को फिर अपनी लपेट में लेगा?
रजनीशवाद जैसी कोई चीज न कभी थी, न है, न होगी। मैं वादों का दुश्मन हूं। इन्हीं वादों ने दुनिया को बरबाद किया है। आखिर इस्लाम क्या है? आखिर ईसाइयत क्या है? आखिर जैनिज्म क्या है? ये किन्हीं व्यक्तियों की चेष्टाएं हैं सारी दुनिया को अपनी लपेट में लेने की। ये सब हार गए। और अपनी हार में सारी दुनिया को गंदगी में पटक गए।
मैं कोई ऐसा पाप करने को राजी नहीं हूं। मैं दुनिया को अपने घेरे में नहीं लेना चाहता। मैं चाहता हूं कि दुनिया मुझे अपने घेरे में ले ले। भूल जाए मेरा नाम, भूल जाए मेरा पता, अपनी याद करे। मैं अपने पीछे कोई धर्म नहीं छोड़ जाना चाहता हूं।
मेरी एक ही प्रार्थना है उन लोगों से जो मुझे प्रेम करते हैं, कि उनके प्रेम का एक ही सबूत होगा, कि वे मुझे क्षमा कर दें और मुझे सदा के लिए भूल

जाएं। हां, अगर कोई सत्य मुझसे प्रकट हुआ हो, तो सत्य को पी लें--जी भर कर पी लें। लेकिन वह सत्य मेरा नहीं है। सत्य किसी का भी नहीं है। सत्य तो बस अपना है। उस पर कोई लेबल नहीं है, कोई विशेषण नहीं है।
इसलिए मैं तो घुल जाना चाहता हूं, मिल जाना चाहता हूं, मिट जाना चाहता हूं। यूं कि मेरे पैरों के निशान भी जमीन पर न रह जाएं कि कोई उनका अनुसरण करे। जैसे पक्षी आकाश में उड़ते हैं, लेकिन उनके पैरों के कोई चिह्न आकाश में नहीं छूटते। मैं भी कोई चिह्न अपने पीछे नहीं छोड़ जाना चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि मनुष्यता सत्य को, प्रेम को, करुणा को, ध्यान को, अस्तित्व को--इनको प्रेम करे। मैं तो कल नहीं था, कल नहीं हो जाऊंगा। इस अस्थिपंजर को मूर्ति मत बना लेना।
और मैं किसी को अपनी लपेट में नहीं लेना चाहता हूं। इस संबंध में यह
भी तुम्हें कह दूं कि जो लोग दुनिया में इस चेष्टा में संलग्न होते हैं कि लोग उनके अनुयायी हो जाएं, लोग उनकी लपेट में आ जाएं, ये कोई भले लोग नहीं होते। ये अहंकारी हैं। ये अपने अहंकार के शिखर को बड़े से बड़े करना चाहते हैं। ये तुम्हारे कंधों पर खड़े होकर आकाश के तारे छूना चाहते हैं।
मैं तो यूं मिट जाना चाहता हूं कि जैसे कभी था नहीं। सिर्फ वही रह जाए
जो सदा था, सदा है और सदा रहेगा। और उसकी ही तुम लपेट में रहो। मुझसे क्या लेना-देना है? मेरा क्या मूल्य है।
दूसरी बात तुम्हारे प्रश्न में हैः कि क्या आप एक चार्वाक ही होकर रह जाएंगे?
शायद तुम्हें पता नहीं कि चार्वाक शब्द का क्या अर्थ है। और शायद यह
भी पता नहीं कि चार्वाक कभी कोई व्यक्ति नहीं था। चार्वाक एक परंपरा थी-- एक जीवन दृष्टि थी। जो लोग उस जीवन-दृष्टि के विरोध में थे, उन्होंने यह नाम "चार्वाक" दिया है। चार्वाक शब्द का अर्थ हैः जो चरने में विश्वास करता है--खाओ, पीओ, मौज करो, चरे जाओ! लेकिन यह असली नाम नहीं है उस परंपरा का। उस परंपरा का अपना नाम थाः "चारु वाक।" चार्वाक नहीं, चारु वाक। और चारु वाक का अर्थ होता हैः मीठे वचन। चारुः मीठे; वाकः वचन।
आदमी ने आदमी के साथ क्या किया है, यह बड़ी हैरानी की बात है। ऐसी बेईमानी कि उसके असली नाम को, परंपरा को--जो कि सिर्फ इतना ही कहती थी कि जीवन में एक मिठास हो, तुम्हारे वचन-वचन में फूल झरें--उसको विकृत किया। निश्चित ही चारुवाक कहता था कि जीवन ने जो कुछ तुम्हें दिया है, उसका जितना आनंद ले सको, लो। वह कोई त्यागी नहीं है, वह कोई भगोड़ा नहीं है, वह कोई जीवन-विरोधी नहीं है। चारुवाक की परंपरा है कि जीवन को जितने मधुर रस से भर दे, यह उसकी आकांक्षा है।
यह जान कर तुम्हें आश्चर्य होगा कि चारुवाक की लंबी परंपरा का एक भी ग्रंथ मौजूद नहीं है। सारे ग्रंथ हिंदुओं ने जला डाले। क्योंकि बात ही उसकी इतनी मीठी थी कि खतरा था। और बात उसकी इतनी तर्कयुक्त थी कि पुरोहित को खतरा था। क्योंकि चारुवाक कह रहा थाः मत करो फिकर परलोक की। अगर तुमने इस लोक को आनंद, सौंदर्य और मधुरिमा में जीया है, तो अगर कोई परलोक है... खयाल करें उसके शब्दों परः "अगर कोई परलोक है, तो वह इसी लोक का ही तो विस्तार होगा।"
और ईमानदारी उसकी कि उसने कहा कि जब तक कि मैं मर न जाऊं, मैं कैसे जानूं कि परलोक है? क्योंकि कोई भी तो कभी लौटा नहीं यह खबर देने कि हां, परलोक है।
इसलिए मैं तुमसे इतना ही कह सकता हूं कि जो है, उसको जितनी प्रीति और जितने आनंद से जी सको, तुम्हारा जीवन जितना नृत्य बन सके और तुम्हारे घुंघरुओं की आवाज जितनी मधुर हो, उतना अच्छा है। क्योंकि अगर कोई परलोक है तो उस परलोक की आधारशिला इसी लोक में रखी जाएगी। तुम ही तो परलोक में होओगे। और अगर तुम यहां आनंदित हो, तो वहां परम आनंदित होओगे। और अगर परलोक नहीं है, तो कोई प्रश्न नहीं है। न तुम होओगे, न कोई अनुभव होगा।
एक ईमानदार दार्शनिक परंपरा।
लेकिन सारे तथाकथित धर्म परलोक के सहारे जीते हैं। वे तुम्हारे इस लोक को नष्ट करते हैं और तुम्हें आश्वासन देते हैं, कि परलोक में तुम्हें

इसका पुरस्कार मिलेगा। और उनका पुरस्कार अगर तुम देखो, तो बड़ी हैरानी में पड़ जाओगे।
मुसलमान कहते हैं कि इस लोक में जो शराब पीएगा, वह सबसे बड़ा पापी है। लेकिन परलोक में शराब की नदियां बहती हैं। क्या तुम इसमें कोई तर्क संगति देखते हो? अगर यहां साधु होना है तो शराब मत पीना, छूना मत। मधुशाला के पास से भी न गुजरना। और यह थोड़े ही दिन की बात है। क्योंकि मुसलमान और ईसाई और यहूदी एक ही जन्म को मानते हैं। बहुत तो निकल गई, थोड़ी बची है यह भी निकल जाएगी। जरा गुजार दो, फिर परलोक है। और वहां आनंद ही आनंद है।
हिंदू कहते हैं कि यहां अगर तुमने स्त्री को प्रेम दिया, तो नरक में पड़ोगे। लेकिन अगर सच में चाहते हो सुंदरतम अप्सराओं का प्रेम, तो जरा रुको, जरा धीरज रखो। परलोक में अप्सराएं ही अप्सराएं हैं। और उनका वर्णन भी थोड़ा समझने जैसा है। सदियों पर सदियां बीत गईं, अनंतकाल बीत गया, वे परलोक की जो अप्सराएं हैं, अब भी सोलह साल की हैं। उनकी उम्र नहीं बढ़ती। ऐसा लगता है, चमड़ी कम, प्लास्टिक की ज्यादा बनी हैं। और यह भी मजा है कि वे कोई पतिव्रता नहीं हैं। और न मालूम कितने ऋषि-मुनि आते रहे, जाते रहे, अपने पुण्य का फल पाते रहे। मगर बड़े आश्चर्य की बात है कि यहां स्त्री को छूना भी पाप है, और वहां स्त्रियों का जमघट है, जो ऋषि-मुनियों की प्रतीक्षा कर रहा है।
मुझे इसमें गणित की भूल मालूम पड़ती है। अगर यह बात सच है कि वहां स्त्रियां प्रतीक्षा कर रही हैं, तो कम से कम थोड़ा अभ्यास यहां तो करने दो। यहां तो तुम्हारा ऋषि-मुनि सूख-सूख कर मरा जा रहा है। और जीवन भर ब्रह्मचर्य को साधने की कोशिश में करीब-करीब मुर्दा हो गया है। इस गरीब को अप्सराएं घेर लेंगी, यह भागेगा कि माई, यह क्या करती हो?
मैंने सुना है कि एक बहुत बड़ा हिंदू महात्मा मरा, जिसका एक ही उपदेश
था कि ब्रह्मचर्य ही ब्रह्म को पाने का उपाय है। उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। उसके मर जाने के बाद, जो उसका निकटतम शिष्य था, वह विरह न सह सका। दूसरे दिन उसका भी हार्ट फेल हो गया। वह चला स्वर्ग के मार्ग पर, बड़ा आनंदित कि गुरु के दर्शन होंगे। और बड़ा आनंदित कि गुरु आनंद भोग रहे होंगे।
और जब स्वर्ग पहुंचा तो देखा, एक वृक्ष के नीचे सूख गई हड्डियों वाला बूढ़ा गुरु नग्न पड़ा है। और अमरीका की तभी-तभी मरी हुई मर्लिन मनरो, वहां की बड़ी अभिनेत्री, जिससे प्रेसिडेंट केनेडी भी चोरी-छिपे मिला करते थे, वह उसके गुरु से लिपटी हुई है। उसने कहा, हे मेरे भगवान! आंख खोलूं कि बंद रखूं? रखना तो बंद ही चाहिए शास्त्र के अनुसार, लेकिन दिल तो आंख खोल कर देखने का होता है।
और हर आदमी तरकीब निकाल लेता है। वह झट से गुरु के चरणों में गिर पड़ा।
और उसने कहाः हे मेरे गुरु, मुझे मालूम ही था कि तुमने ऐसा ब्रह्मचर्य साधा है कि तुम्हें इसका परम फल मिलेगा।
इसके पहले कि गुरु कुछ बोलते, मर्लिन मनरो ने कहाः अरे नालायक, यह तेरे गुरु को पुरस्कार नहीं मिल रहा है, यह मुझे दंड मिल रहा है। यह कमबख्त न मालूम कब से नहाया भी नहीं है।
सारे धर्मों की यही व्यवस्था है। इस लोक को विकृत करो, ताकि परलोक में तुम्हें पुरस्कार मिले। मगर यह बिल्कुल ही तर्क के विरुद्ध है, गणित के विरुद्ध है। अगर परलोक में सुख मिलना है, तो उसका अभ्यास इस लोक में हो जाना जरूरी है। यह तो एक छोटी-मोटी पाठशाला है, जहां थोड़ा अभ्यास कर लो, फिर परलोक में... ।
चार्वाक को चार्वाक मत कहो, चारुवाक कहो। उसके वचन बड़े मीठे हैं। उसकी तो सारी किताबें जला दी गईं। उस परंपरा को पूरी की पूरी तरह नष्ट कर दिया गया। लेकिन विरोधियों की किताब में चारुवाक का खंडन करने के लिए कुछ-कुछ उद्धरण उपलब्ध होते हैं।
वे उद्धरण भी काफी हैं कि जिसने भी इस परंपरा को शुरू किया होगा, वह अति प्रतिभा संपन्न व्यक्ति होगा। वह परलोक को और इस लोक को जोड़ रहा है, तोड़ नहीं रहा है। वह जीवन को बांट नहीं रहा है, अखंड बना रहा है। और वह तुमसे कह रहा है कि यह लोक भी उसी परमात्मा का है; परलोक भी उसी परमात्मा का है, इन दोनों के बीच विरोध की खाई बंद होनी चाहिए।

तुम पूछते होः "क्या आप चार्वाक ही होकर रह जाएंगे?"
शायद तुम्हें मेरी पूरी जीवन दृष्टि का कोई पता नहीं है। मेरी पूरी जीवन दृष्टि हैः चार्वाक और गौतम बुद्ध को जोड़ देना। गौतम बुद्ध परलोक है, चार्वाक यही लोक है। चार्वाक भी अधूरा है, अगर परलोक की कोई धारणा न हो। और गौतम बुद्ध भी अधूरे हैं, अगर इस जीवन के प्रति निषेध हो।
मैं जीवन को उसकी सर्वांगीणता में स्वीकार करता हूं। मैं चार्वाक हूं
और मैंने बुद्धत्व की उस ऊंचाई को भी छुआ है। और मैंने कोई अनुभव नहीं किया है कि उन दोनों में कोई विरोध है। संसार में विरोध हो ही नहीं सकता, क्योंकि यह एक इकट्ठी इकाई है। यहां दो नहीं हैं। यह एक ही परमात्मा का विस्तार है। परमात्मा के पैर उतने ही जरूरी हैं, जितना कि परमात्मा का सिर। मत काटो परमात्मा को दो हिस्सों में। अन्यथा पैर भी मर जाएंगे और सिर भी मर जाएगा। मैं दोनों को एक साथ देखना चाहता हूं। मैं देखना चाहता हूं बुद्ध को जीवन के सारे आनंद, सारी संभावनाओं के साथ; और मैं देखना चाहता हूं चारुवाक को स्वर्ग की सारी ऊंचाइयों के साथ।
क्या यह नहीं हो सकता? मैंने तो इसे अपने भीतर होते देखा है, इसलिए अधिकारपूर्वक कहता हूं कि अगर यह मेरे भीतर हो सकता है, यह तुम्हारे भीतर हो सकता है।
जीवन को एक अखंड इकाई की तरह स्वीकार कर लेना मनुष्य की प्रतिभा का सबसे महत्वपूर्ण अंग है।

धन्यवाद।

फिर अमरित की बूंद पड़ी
चौथा प्रवचन

मैं तुम्हें इक्कीसवीं सदी में ले जा सकता हूं

प्रश्नः आजकल हमारे देश में नीति-निर्माण बार-बार देश को इक्कीसवीं शताब्दी में ले जाने की बात कर रहा है। खासकर के पिछले डेढ़-दो वर्षों में यह बहस काफी बढ़ गई है कि देश को इक्कीसवीं शताब्दी में ले जाना है। क्या आप समझते हैं कि मौजूदा हालातों में यह संभव होगा?

पहली तो बात यह है कि देश बीसवीं सदी में भी है या नहीं! इक्कीस में ले जाना है, वह तो समझ में आ गया, मगर किसको ले जाओगे? यहां लोग हजारों वर्ष पीछे जी रहे हैं। इस देश के नेता-महात्मा गांधी जैसे लोग भी सोचते हैं कि चरखे के बाद जो भी वैज्ञानिक अनुसंधान आविष्कार हुए हैं, वे सब नष्ट कर दिए जाने चाहिए। चरखा आखिरी विज्ञान है। महात्मा गांधी रेलगाड़ी के खिलाफ थे, टेलीफोन के खिलाफ थे, टेलीग्राम के खिलाफ थे! अगर उनकी बात मान ली जाए... और उनकी बात मान कर इस देश के नेता चलते रहे हैं। कम से कम दिखाते तो रहे हैं, कम से कम गांधी की टोपी तो लगाए रहते हैं, कम से कम गांधी की खादी तो पहन रखी है। अगर उनकी बात मान ली जाए तो यह देश कम से कम दो हजार साल पीछे पहुंच जाएगा। इक्कीसवीं सदी की तो छोड़ दो, अगर यह पहली सदी में भी पहुंच जाए तो धन्यभाग! जो लोग इसे इक्कीसवीं सदी में पहुंचाने की बातें कर रहे हैं, उनकी खुद की बुद्धि इतने सड़े-गले विचारों से भरी है कि वे विचार सारी दुनिया में कभी के रद्द हो चुके, मगर भारत में अभी भी जिंदा हैं। बात तो बड़ी प्यारी है कि इक्कीसवीं सदी में चले चलें और दूसरों से भी पहले चले चलें--मगर बैठे हैं बैलगाड़ी पर! दूसरे चांद पर पहुंच गए हैं। हां, कहानियों में कभी-कभी हम भी चांद पर पहुंच जाते हैं। मगर चांद पर भी पहुंच जाएंगे तो भी रहेंगे तो हम हीं।
मैंने सुना है कि जब पहली बार पहला अमरीकी चांद पर उतरा तो वह देख कर हैरान हुआ कि एक हिंदू साधु धूनी रमाए वहां बैठा है! उसने कहाः हद्द हो गई! हम मर गए मेहनत कर-कर के, अरबों-खरबों डालरों का खर्च, और ये भैया धूनी लगाए यहां पहले ही से बैठे हैं! आध्यात्मिक चमत्कार ही है। सो उस अमरीकन ने जाकर उनके पैर छुए, जब उन्होंने पैर छुए तो साधु ने आंखें खोलीं और अमरीकी से बोला, सिगरेट है? बहुत दिन हो गए, अमरीकी सिगरेट का मजा नहीं मिला। उसने कहाः सिगरेट तो तुम ले लो, मगर यह तो बताओ यहां पहुंचे कैसे?
साधु ने कहाः इसमें भी क्या अड़चन है! हमारे देश की आबादी जानते हो? आजाद हुआ था, तब चार सौ मिलियन थी। अब नौ सौ मिलियन है। और इस सदी के पूरे होते-होते एक हजार मिलियन को पार कर जाएगी। तुम्हारे सब ढोंग-धतूरों की हम सुनते थे कि तुम यह आयोजन कर रहे हो, वह आयोजन कर रहे हो। हमने कहा, क्यों फिजूल की बातों में पड़ते हो, अरे एक के ऊपर एक खड़े होने लगो--एक के ऊपर एक! जैसे बंबई में मकान खड़े करते हैं ऐसे आदमियों को एक के ऊपर एक खड़ा करते चले गए और चूंकि हम साधु थे, इसलिए सबके ऊपर! मगर सब नालायक, यहां मुझे अकेला छोड़ कर अपने-अपने काम-धंधे पर चले गए।
कहानियों में इक्कीसवीं सदी में पहुंच जाना आसान है। और भोली-भाली जनता को, नासमझ जनता को, जिसे इक्कीस तक गिनती भी पढ़नी नहीं आती, जिसके लिए दस यानी बस--उसको तुम इक्कीसवीं सदी की बात करो, कि इक्तीसवीं सदी की बात करो, कोई फर्क नहीं पड़ता। सोचती है जब तुम कह रहे हो तो ठीक ही कह रहे होओगे।
और फिर तुम्हारी किसी बात का कोई भरोसा भी नहीं रहा है, क्योंकि चालीस साल से तुमने हर बार धोखा दिया। चालीस साल से भारत के नेता धोखे पर धोखा दे रहे हैं। जनता के मन में एक समादर की भावना थी चालीस साल पहले। इन्हीं लोगों के प्रति, इनके बापदादों के प्रति। आज भारत के बेपढ़े लोगों के मन में भी राजनीतिज्ञों के प्रति कोई सम्मान नहीं है, सिर्फ अपमान है। इनकी गिनती भी लुच्चे-लफंगों के सिवाय और किन्हीं में की जाती नहीं--की भी नहीं जा सकती। लुच्चे-लफंगे तो किसी एकाध आदमी को इधर-उधर थोड़ा-बहुत लूट-खसोट

लेते हैं, किसी की जेब काट ली--ये सारे देश की संभावनाओं को नष्ट कर रहे हैं। सारे देश के आने वाले भविष्य को खराब कर रहे हैं। लेकिन लफ्फाजी की बातें तो इन्हें करनी ही पड़ेंगी। बातों के सिवाय इनके पास कुछ और है भी नहीं। इक्कीसवीं सदी। और चारों तरफ भारत के लोगों को देखो!
इक्कीसवीं सदी को लाने का अर्थ होगा, जीवन के सारे मूल्य बदले जाएं।
अभी भी हरिजनों के साथ वही व्यवहार हो रहा है जो पांच हजार साल पहले होता था। और झूठ ऐसा हमारी आत्माओं में घुसा है कि साधारण आदमी को हम छोड़ दें, साधारण आदमी की मैं बात ही नहीं करता--महात्मा गांधी का यह निरंतर कहना था कि भारत का पहला राष्ट्रपति एक औरत होगी और हरिजन औरत होगी। न तो डाक्टर राजेंद्र प्रसाद औरत थे, जहां तक मैं समझता हूं, और न ही हरिजन थे-- और गांधी ने ही उनको चुना! क्या हुआ उन पुराने वायदों का? कहां गई वे ऊंची- ऊंची बातें? जो जहर तुमने हरिजनों को पिलाया, वह कहां गया?
वह भी सब राजनीति थी। क्योंकि घबड़ाहट वही की वही थी, अंबेदकर के नेतृत्व में हरिजन भी अलग हो जाना चाहते थे। अगर मुसलमान अपना देश अलग मांग रहे हैं और उनकी मांग जायज समझी जा रही है। और हिंदू अपना देश अलग मांग रहे हैं तो हरिजन जो कि हिंदुओं का चौथा हिस्सा हैं। और हजारों साल से सताए गए लोग हैं। इस दुनिया में उनसे ज्यादा सताया गया और कोई भी नहीं है। अगर वे भी चाहें कि हमें अपना अलग देश दे दो, तो गांधी उपवास पर बैठ गए! आमरण उपवास! आमरण उपवास एक का भी नहीं हुआ, क्योंकि मरने के पहले ही संतरे का रस--उस सबका आयोजन पहले से होता है। डाक्टर जांच कर रहे हैं।
और सारे देश में उथल-पुथल... कि महात्मा गांधी कहीं मर न जाएं--बात का रुख ही बदल दिया। हरिजनों की तो बात ही समाप्त हो गई। अंबेदकर की जान पर बन आई। लोग उसकी गर्दन दबाने लगे कि तुम माफी मांगो महात्मा गांधी से और कहो कि हम अलग देश या अलग होने की मांग नहीं करेंगे। उसकी मांग जायज थी। लेकिन यहां जायज और नाजायज की कौन फिकर करता है! और उसको भी लगा कि अगर महात्मा गांधी मर गए... तो मैं मर जाऊं यह तो कोई बड़ी बात नहीं है, इस देश में हरिजनों को जला कर खाक कर दिया जाएगा--एक कोने से दूसरे कोने तक। उनके झोपड़ों में आग लग जाएगी, उनकी स्त्रियों पर बलात्कार होंगे, गांधी के मरने का बदला लिया जाएगा। यह बात ही खत्म हो गई कि वह जो कह रहा था, ठीक कह रहा था या गलत कह रहा था--यह बात का रुख ही बदल गया।
मामला यह हो गया कि इतने हरिजनों को इतने उपद्रव में डालना उचित है या नहीं? यूं ही बेचारे बहुत परेशान रहे हैं। अब और यह आखिरी परेशानी है। तो अंबेदकर खुद ही संतरे का रस लेकर हाजिर हो गए, माफी भी मांग ली--जानते हुए कि यह आदमी धोखा दे रहा है हरिजनों को, यह आदमी इस देश को धोखा दे रहा है। लेकिन हरिजनों को न तो अलग होने का हक है, न अलग मताधिकार का हक है। उतनी छोटी सी मांग थी कि या तो अलग देश दे दो या कम से कम अलग मताधिकार दे दो, ताकि इनकी आवाज भी तुम्हारी संसद में पहुंच सके कि इन पर क्या गुजरती है-- इसकी खबर भी नहीं छपती, इसकी खबर भी तुम तक नहीं पहुंचती।
और आश्वासन दिया गांधी ने कि चिंता न करो, पहला राष्ट्रपति हरिजन होगा। और न केवल हरिजन, बल्कि, स्त्री। क्योंकि स्त्री को भी बहुत सताया गया है। हरिजन को भी बहुत सताया गया है। स्वतंत्रता में यह सब न चलेगा। स्वतंत्रता आ भी गई--न कोई हरिजन, न कोई स्त्री! स्वतंत्रता आई और करोड़ों लोग मरे, लुटे, न मालूम कितने बच्चों की जानें गईं, कितनी स्त्रियों की इज्जत गई, कितने लोगों को जबरदस्ती जिंदा जलाया गया। गजब की आजादी आई!
यह प्रेम से हो सकता था। लेकिन महात्मा गांधी और उनके शिष्यों ने यह नहीं होने दिया। इसे उस स्थिति तक पहुंचा दिया, जहां दुश्मनी आखिरी जगह पहुंच गई। कि जब यह हुआ तो इसका परिणाम हिंसा के सिवाय और कुछ न था। यही पंजाब में हो रहा है। यही आसाम में हो रहा है। यही कश्मीर में हो रहा है। यही देश के कोने-कोने में होगा। और ये छुटभैये देश को इक्कीसवीं सदी में ले चले!
एक ही तरकीब है ले जाने की--इक्कीसवीं सदी के कैलेंडर छाप लो और घरों में टांग दो। पहुंच गए इक्कीसवीं सदी में! गिनती करने लगो इक्कीसवें सदी की। किसी के बाप का हक है कि रोके। कैलेंडर हमारा, हम छापते हैं, हमें नहीं

रहना बीसवीं सदी में, हमें इक्कीसवीं सदी में रहना है। कैलेंडर में पहुंच सकते हो, जिंदगी में नहीं। और जिंदगी में जो तुम्हें पहुंचा सकते हैं, उनकी तुम सुनने को भी राजी नहीं हो।
मैं तुम्हें इक्कीसवीं सदी में पहुंचा सकता हूं, लेकिन तुम मेरी बात
भी सुनने को राजी नहीं हो। क्योंकि इक्कीसवीं सदी में पहुंचना दो बातों पर निर्भर है। पहला, तुम्हें अपने अतीत से मुक्त होना होगा, निर्भार होना होगा। तुम इस बुरी तरह बंधे हो पीछे से कि एक कदम आगे बढ़ते हो और दो कदम पीछे हट जाते हो। हर मामले में तुम पीछे बंधे हो। पीछे से सारे संबंध छोड़ देने होंगे। जरा सोचो, प्रकृति ने भी आंखें तुम्हारी खोपड़ी में पीछे नहीं लगाई हैं। आंखें हैं आगे देखने को, जो बीता सो बीता, जो छूटा सो छूटा, जो टूटा सो टूटा। आंखें आगे लगाओ। मगर नहीं, तुम रामलीला देख रहे हो। इक्कीसवीं सदी में रामलीला नहीं हो सकती। इक्कीसवीं सदी में राम की कोई जगह नहीं है। क्योंकि राम का पूरा व्यवहार अमानवीय है। एक शूद्र के कानों में इसलिए शीशा पिघलवा कर भरवा दिया क्योंकि उसने ऋग्वेद के वचन सुन लिए थे। इसी राम के राज्य को महात्मा गांधी इस देश में लाना चाहते थे। यह बेरहमी, यह अमानवीयता और इसके हो जाने के बाद भी राम अब भी ईश्वर के अवतार बने हैं। अब भी तुम्हारे पूज्य हैं। अब तो उनको जयरामजी करो।
थोड़ा पीछे लौट कर देखो कि किन-किन से तुम बंधे हो और कैसे-कैसे लोगों
से तुम बंधे हो!
कृष्ण की सोलह हजार स्त्रियां थीं, जिनमें सिर्फ एक विवाहित स्त्री थी, रुक्मणि। उसका बहुत नाम भी नहीं आता बेचारी का। विवाहित स्त्रियों को कौन पूछता है? अपनी स्त्रियों को कौन पूछता है? एक को छोड़ कर बाकी जो सोलह हजार थीं--वे भगाई हुई थीं, वे दूसरों की थीं; उनके बच्चे थे, उनके पति थे; उनके बूढ़े सास-ससुर होंगे, उनके घर उजड़ गए होंगे। उनका कसूर सिर्फ इतना था कि वे खूबसूरत थीं। और कृष्ण जिसको देख लें, और उनकी नजर में किसी की खूबसूरती आ जाए, तो फिर इस बात की कोई फिकर नहीं कि इसका परिणाम क्या होगा-- वह स्त्री उठवा ली जाती थी। जबरदस्ती सैनिक उसे उठा कर कृष्ण के हरम में पहुंचा देते थे। और फिर भी भारत में एक भी आदमी की हिम्मत नहीं कि कृष्ण के खिलाफ अंगुली उठाए--कि इस आदमी को हम ईश्वर का पूर्ण अवतार कहते हैं! अगर ये ईश्वर के पूर्णावतार के गुण हैं तो अब हम नहीं चाहते कि ईश्वर दुबारा यहां आएं। अब कहीं और जाएं--बहुत-बहुत तारे हैं, बहुत उपग्रह हैं, बहुत नक्षत्र हैं, जहां मर्जी हो, मरें; मगर यहां नहीं।
मैं गुजरात में एक शिविर ले रहा था, छोटी सी सुंदर जगह--तुलसी श्याम। तुलसी श्याम की भगाई हुई पत्नी थी। मंदिर में भगाई हुई पत्नी के साथ उनकी मूर्ति है, जेलखाने में होनी चाहिए, मंदिर में है! घाटी में मंदिर है, मंदिर में तुलसी श्याम की सुंदर मूर्ति है। और घाटी के ऊपर, दूर झाड़ियों में छिपा एक छोटा सा मंदिर है, जिसमें रुक्मणि की मूर्ति है--बेचारी गरीब वहां बैठ कर छिप कर देख रही है कि भैया क्या खेल कर रहे हैं!
तुम्हें अपने बहुत से मूल्य बदलने होंगे। दुखदायी होगा। क्योंकि उन मूल्यों से बड़ा लगाव रहा है। तुमने कभी उनके अंधेरे पहलुओं को देखा ही नहीं। किसी ने तुमसे उनकी कभी आलोचना ही नहीं की। हम आलोचना करना भूल ही गए। हम तो बस अंधी श्रद्धा, अंधी पूजा, अंधा विश्वास... इक्कीसवीं सदी में जाना हो तो तुम्हें इस अंधेपन को छोड़ना होगा। मशीनें नहीं ले जा सकतीं तुम्हें, आंखें चाहिए, साफ आंखें चाहिए। जो दूर तक देख सकती हों। और विश्वासी की आंखें इतनी अंधी होती हैं कि वह पास तक भी नहीं देख सकतीं, दूर तक देखने का तो सवाल ही क्या है। तुम्हें संदेह करना सीखना होगा। क्योंकि संदेह की तलवार ही तुम्हारे अंधविश्वासों को काटेगी। और तुम्हें मौका देगी चिंतन का, मनन का, ध्यान का।
यह जो पश्चिम में विज्ञान पैदा हुआ है, तीन सौ वर्षों में ही पैदा हुआ है। और इन तीन सौ वर्षों में ईसाइयत से इंच-इंच पर लड़ कर पैदा हुआ है। क्योंकि छोटी-छोटी बातों पर ईसाइयों का अड़ंगा है। बाइबिल कहती है, जमीन चपटी है। विज्ञान की खोज कहती है, जमीन गोल है। बाइबिल कहती है, सूरज जमीन के चक्कर लगाता है। और विज्ञान ने पाया कि बात उलटी ही है--जमीन सूरज के चक्कर लगाती है।

और जब गैलीलियो ने पहली दफा अपनी किताब में यह लिखा कि जमीन सूरज के चक्कर लगाती है तो उस बूढ़े आदमी को जो बिल्कुल मरणासन्न था, घसीट कर पोप की अदालत में ले जाया गया। और पोप ने उससे कहा कि तुम अपनी किताब में बदलाहट कर लो, अन्यथा जिंदा जला दिए जाओगे। गैलीलियो ने कहाः मुझे कोई अड़चन नहीं है, मैं किताब में बदलाहट कर लूंगा। जिंदा जलने का मुझे कोई शौक नहीं है, मर कर तो जलना ही है, इतनी जल्दी भी क्या है। रही किताब, सो किताब में बदल दूंगा। मगर एक बात कहे देता हूं, मेरे किताब में बदलने से कोई भी फर्क नहीं होगा; जमीन सूरज के चक्कर लगाएगी और लगाएगी। लाख मेरी किताब में मैं कुछ भी लिखूं, न सूरज पढ़ता है मेरी किताब, न जमीन पढ़ती है मेरी किताब। और तुम इतना परेशान क्यों हो? एक छोटी सी लकीर, अगर बाइबिल के खिलाफ चली जाती है तो तुम्हारी इतनी परेशानी क्या है?
और पोप ने जो शब्द कहे, वे खयाल रखने जैसे हैं। पोप ने कहा कि परेशानी
यह है कि अगर बाइबिल का एक वचन भी गलत सिद्ध हो जाता है, तो लोगों को संदेह उठने शुरू हो जाएंगे कि कौन जाने, जब एक बात गलत हो गई तो दूसरी बातें भी गलत हों--कौन जाने! और अब तक वे मानते रहे कि बाइबिल ईश्वर की लिखी हुई किताब है। और अगर ईश्वर भी गलतियां कर सकता है तो पोप की क्या हैसियत है, जो इस बात का दावा करता है कि उससे गलतियां होती ही नहीं हैं। हम बाइबिल में लिखी किसी बात के खिलाफ कुछ भी बरदाश्त न करेंगे। लेकिन लड़ाई जारी रही। तीन सौ वर्षों में निरंतर विज्ञान इंच-इंच लड़ा।
इस देश में कोई लड़ाई नहीं हुई है। इस देश में विज्ञान सिर्फ तुमने स्कूल और कालेज में पढ़ा है, सिर्फ ऊपर-ऊपर है। विज्ञान भी पढ़ रहे हैं, हाथ में हनुमान जी का ताबीज भी बांधे हुए बैठे हैं। ये नालायक तुम्हें इक्कीसवीं सदी में ले जाएंगे? विज्ञान की परीक्षा देने जाते हैं, पहले हनुमान जी के मंदिर में नारियल फोड़ आते हैं! वैज्ञानिक दृष्टिकोण पैदा नहीं हो पाया है। उधार है हमारा सब विज्ञान; पढ़-लिख लेते हैं, समझ लेते हैं, मगर भीतर, भीतर हम वही के वही हैं। भीतर हमारे विश्वास के आधार वही के वही हैं।
मेरे एक मित्र थे बड़े डाक्टर। न मालूम कितने लोगों का उन्होंने इलाज किया होगा। और उनकी बड़ी दूर-दूर तक प्रसिद्धि थी। लेकिन जब उनकी पत्नी बीमार पड़ी, तो एक दिन मुझसे बोले कि सब इलाज कर रहे हैं, लेकिन उसे लाभ नहीं हो रहा। मेरा नौकर कहता है कि अगर कोई साधु-संत आशीर्वाद दे दें, तो ही कुछ हो सकता है। मैंने कहाः तुम इतने बड़े डाक्टर हो, तुम जानते हो कि बीमारी हो तो उसका कारण होता है। उसका निदान करो, कारण को मिटाने की कोशिश करो। तुम्हारी पत्नी किसी साधु-संत के अभिशाप से तो बीमार हुई नहीं है कि वरदान देने से ठीक हो जाएगी। अगर अभिशाप से बीमार हुई होती तो शायद वरदान देने से ठीक भी हो जाती। वे बोले, तुम कुछ भी कहो, यह मामला ऐसा है कि यहां बुद्धि चकराती है। बात तुम्हारी समझ में आती है, मगर अगर तुम किसी साधु- संत को जानते हो तो बताओ। मैंने कहाः ऐसे मैं बहुत से साधु-संतों को जानता हूं। तुम्हें ले चलूंगा।
मेरे एक मित्र पास ही दस-बारह मील दूर पहाड़ियों में रहते थे। साधु-संत
तो नहीं थे, मस्त आदमी थे। कमा लिया था अपने लायक, ब्याज मिल जाता था, चल जाता था काम। अकेले पहाड़ियों में एक छोटी सी झोपड़ी बना कर मौज से रहते थे। उनसे मैंने कहाः एक दिन जरा साधु-संत होना पड़ेगा। उन्होंने कहाः मतलब? मैंने कहाः जरा धूनी वगैरह लगा लेना, नंग-धड़ंग बैठ जाना, भभूत रमा लेना। अरे, उन्होंने कहाः यह तुम भी क्या बकवास कर रहे हो? काहे के लिए? कोई फिल्म की शूटिंग हो रही है क्या?
मैंने कहाः एक गरीब डाक्टर है, उसकी पत्नी मर रही है। उसको साधु-संतों
का आशीष चाहिए। जरा सी राख उठा कर दे देना, कह देना कि बच्चे, सब ठीक हो जाएगा, जा। वे कहने लगे, बड़ी मुश्किल में डाल रहे हो, इस गांव में सब मुझे जानते हैं, वह डाक्टर भी मुझे जानता है।
तो मैंने कहा कि वह तुम्हें जानता है? उसके पहले मैं नाई को लाऊंगा, तुम्हारी मूंछ, तुम्हारी खोपड़ी--सब सफाई करवाऊंगा। ठीक साधु-संत बनाऊंगा-- ऐसा कि अगर शूटिंग भी हो जाए उस वक्त तो कोई हर्जा नहीं। कहने लगेः यह बात जरा ठीक नहीं है। और फिर इसके बाद तुम तो चले जाओगे--मैं गांव में भी नहीं

जा सकता। लोग पूछेंगे, हुआ क्या? पिताजी मर गए? सिर क्यों मुड़ा लिया है? अरे तुम्हारी मूंछों को क्या हुआ? और मेरी मूंछों की शान है! सच में उनकी बड़ी शानदार मूंछें थीं। और बड़ा ताव देकर रखते थे। मैंने कहाः कुछ भी हो, उनकी औरत को तो बचाना होगा। मूंछें तो फिर उग आएंगी। औरत कहां से लाएंगे? बामुश्किल उनको राजी किया, सिर घुटवाया, मूंछें मुंड़वाईं, वे मुझे गालियां देते रहे, मैं उनका सिर मुंडवाता रहा, दो आदमी उनके हाथ पकड़े रहे। बामुश्किल उनकी मूंछें निकलवाईं। कपड़े उतरवाए। लंगोटी पर अटक गए कि लंगोटी नहीं छोडूंगा। मैंने कहा कि सच्चा साधु लंगोटी भी छोड़ देता है और मैंने उनसे कह रखा है कि वे बिल्कुल सच्चे साधु हैं।
यह अच्छी मुसीबत है, हमें कुछ लेना, न देना।
बेचारे को बैठा दिया। ठंड के दिन, मगर आग जल रही है तो थोड़ी राहत रही। डाक्टर आकर साष्टांग गिर पड़े भूमि पर, उन्होंने देखा ही नहीं उठा कर ऊपर मुंह कि है कौन! पैर पकड़ लिए कि अब बस बचाओ। और मेरे मित्र ने सोचा कि अब यहां तक बात आ गई है तो अब बचा ही लो। कहा, बेटा मत घबड़ा, उठ, तेरी पत्नी को कोई तकलीफ है? बोले कि बस, आपकी ही तलाश थी। मैं भी डाक्टर हूं, मगर पहले आदमी से पूछता हूं कि कौन सी तकलीफ है। और आप यहां मीलों दूर बैठे देख रहे हैं कि मेरी पत्नी बीमार है। बहुत इलाज किया है। साधु महाराज ने कहाः लेकिन कुछ ठीक होता नहीं, होगा भी नहीं; बीमारी आध्यात्मिक है, तू भौतिक चक्कर में पड़ा है। यह ले राख, पहले खुद खा। पर उन्होंने कहाः बीमार मेरी पत्नी है। उन्होंने कहाः तू चुप रह, तेरी ही कम्बख्तियों के कारण तेरी पत्नी बीमार है। पहले तू खा और बाकी पत्नी के लिए ले जा, और बाल-बच्चे हों उनको भी बांट देना। सब ठीक हो जाओगे।
मैं भी उनके साथ गया था। खड़ा देख रहा था। डाक्टर को राख भी खाते देखा,
राख भी ले जाते देखा। कहीं राख से कोई पत्नी ठीक होती है? उसको तो मरना था सो मर ही गई। असल में हम घर पहुंचे, इसके पहले ही वह मर चुकी थी। डाक्टर बोला, कैसा है वह साधु! उस दुष्ट ने मुझे राख भी खिला दी, इधर औरत को भी मार डाला। मैंने कहाः साधुओं के चमत्कार साधु ही जानें, तुम न समझ सकोगे। तुम अपनी डाक्टरी करो। पत्नी मोक्ष गई। कहने लगे, अजीब मुसीबत है, न मालूम कहां के साधु के पास ले गए! पहले तो मुझे राख खिलाई वही बात गलत थी, उसी वक्त मुझे कुछ शक हुआ था। और शक सच्चा निकला। और उस दुष्ट ने मुझसे यह भी कहा कि तेरी ही कम्बख्तियों की वजह से तेरी पत्नी मर गई है। मैंने कहाः अब घबड़ाओ मत, तुम ही बहुत साधु-संतों की तलाश करने में पड़े थे। बामुश्किल तो मैं खोज पाया। कितनी मुसीबतें मैंने उठाईं, उसका तुम्हें पता भी नहीं है। पहले तुम्हारी दूसरी शादी हो जाए, फिर बताऊंगा।
यहां इंजीनियर हैं, डाक्टर हैं, आर्किटेक्ट हैं, वैज्ञानिक हैं, लेकिन यह सब केवल बौद्धिक विचार रह जाता है। उनके भीतर सदियों-सदियों के पड़े हुए संस्कार, ऐसी जंजीरों की तरह जकड़े हुए हैं। पश्चिम भी चले जाते हैं, वहां से भी शिक्षा लेकर लौट आते हैं, मगर यहां आकर फिर वही गोरखधंधा! और वही गोरख धंधा करते हैं तो लोग बड़ी प्रशंसा करते हैं। कहते हैं कि देखो पश्चिम भी हो आया है, पश्चिम के विश्वविद्यालयों में शिक्षा भी पाई, मगर अपने भारतीत्व को नहीं खोया। अभी भी मंदिर जाता है, अभी भी मस्जिद पहुंच जाता है। अभी भी रोज सुबह उठ कर बाइबिल को पहले नमस्कार करता है, फिर दूसरा काम शुरू करता है।
इस देश को इक्कीसवीं सदी में जरूर ले जाया जा सकता है। लेकिन इस देश
को इक्कीसवीं सदी में ले जाने के पहले, ये जो हजारों वर्ष के पुराने संस्कार हैं, इनसे मुक्त करना जरूरी है। और उनसे मुक्त करने का एक ही उपाय है। और मैं उसी उपाय की चर्चा कर रहा हूं निरंतर कि तुम किसी तरह ध्यान करना सीख लो, कि तुम किसी तरह उस अवस्था को अपने भीतर पैदा करना सीख लो, जहां विचारों की तरंग बंद हो जाती है। जहां कोई हलचल, कोई ऊहापोह, कुछ भी नहीं होता। जहां तुम निस्तरंग, शांत और मौन हो जाते हो। उस मौन में तुम अतीत से टूट जाते हो, वर्तमान में आ जाते हो। और जो आज आ गया, उसे हम कल की यात्रा पर ले चल सकते हैं। मगर पहले उसे आज तो लाना होगा। आज की छलांग, कल तक पहुंचा देगी। लेकिन आज तो आना ही होगा।

अभी भारत वर्तमान में भी नहीं है। इसकी नजरें पीछे हैं, इसके आराध्य पीछे हैं, इसका स्वर्णयुग पीछे है। ये पूरे हालात बदलने होंगे।
मैंने सुना है, एक रास्ते पर एक दुबला-पतला युवक मोटर साइकिल पर तेजी
से भागा जा रहा है, हवा बहुत तेज है और उलटी है। सो उसने गाड़ी रोक कर अपना कोट उलटा कर लिया, ताकि छाती पर हवा इतने जोर से न लगे, सर्दी-जुकाम न पकड़ जाए। कोट उलटा कर लिया, बटनें पीछे लगा लीं, मफलर गले से ठीक से बांध लिया। फिर चला अपनी गाड़ी पर।
उधर से आ रहे थे एक सरदारजी, उन्होंने इसको देखा, उन्होंने कहा, मार डाला, यह आदमी उलटा बैठा है और इतनी तेजी से साइकिल चला रहा है। घबड़ाहट में वे टकरा गए। आदमी नीचे गिरा, बेहोश हो गया। सरदारजी ने कहा, अच्छी मुसीबत में हम भी पड़े, यह आदमी है कैसा! अब इसका सिर किसी तरह सीधा करें। यहां तो कोई दिखाई भी नहीं पड़ता कि जिसको बुलाएं सहायता के लिए। सो उन्होंने एक जोर से झटका दिया--सरदारी झटका--वाहे गुरुजी की फतह! वाहे गुरुजी का खालसा! और दिया जोर से झटका, उसका मुंह दूसरी तरह फेर दिया।
तभी वहां पुलिस की गाड़ी पहुंच गई, पूछा कि क्या मामला है? सरदारजी ने कहाः क्या मामला है--यह आदमी बेचारा मोटर साइकिल पर उलटा बैठा था। उन्होंने पूछा, जिंदा है? सरदारजी ने कहाः जिंदा था। अजीब किस्म का आदमी है, जब तक उलटी खोपड़ी थी, जिंदा था। मैंने बामुश्किल इसकी खोपड़ी उलटी की। गुरुजी की दुआ से खोपड़ी तो उलटी से सीधी हो गई, मगर श्वास बंद हो गई। अब भैया श्वास तुम सम्हालो, मुझे दूसरे काम पर जाना है। उन्होंने गौर से देखा कि मामला क्या है। बात तो ठीक कहता है। कोट के बटन सबूत देते हैं। बटन खोले तो देखा कि बात यह थी कि उसने कोट उलटा किया हुआ था, तब तक सरदारजी जा चुके थे। वह आदमी मुफ्त मारा गया।
इस भारत की दशा भी कुछ ऐसी ही है। तुम जिस तरफ जा रहे हो, उस तरफ तुम्हारा मुंह नहीं है। जिस तरफ से तुम आ रहे हो, तुम्हारा मुंह अब भी वहीं है! तुम अगर बार-बार गड्ढों में गिरते हो तो कुछ आश्चर्य नहीं है।
भविष्य की तरफ देखो। अतीत के साथ बहुत दिन बंध कर देख लिया, कुछ भी न पाया। हाथ खाली हैं, पेट खाली है, गरीबी रोज बढ़ती जाती है। भविष्य की तरफ देखो हालात बदलने शुरू हो जाएंगे। प्रतिभा की तुम्हारे पास कोई कमी नहीं है, मगर प्रतिभा को गलत आयाम, गलत दिशा में उलझा रखा है। प्रतिभा को ठीक-ठीक दिशा दो।
और मेरा अनुभव यह है कि अगर तुम ध्यान की चौबीस घंटों में कुछ देर के लिए भी अनुभूति ले लो, नहा जाओ, ताजे हो जाओ, तो तुम वर्तमान में आ जाओगे। वहीं, जहां तुम हो। और यहीं से जाता है रास्ता भविष्य की तरफ। इक्कीसवीं सदी हो या बाईसवीं सदी हो, यहीं से जाता है रास्ता भविष्य की तरफ।
लेकिन जो राजनीतिज्ञ तुमसे कह रहे हैं कि भविष्य... इक्कीसवीं सदी लानी है, वे खुद भी यहां नहीं हैं। इक्कीसवीं सदी तो बहुत दूर, अभी उनकी बीसवीं सदी भी नहीं आई। और तुम दिल्ली में जाकर देख सकते हो--सब तरह के ज्योतिषी, सब तरह के हस्तरेखा-विद, सब तरह के महात्मा, साधु-संत अड्डा जमाए हुए बैठे हैं। हर राजनीतिज्ञ का कोई न कोई महात्मा गुरु है। कोई न कोई हस्तरेखा-विद, उसकी हाथ की रेखाओं को पढ़ कर बताता है कि कब किस घड़ी में वह चुनाव का फार्म भरे--तारे कब सहयोगी हैं और कब तारे विरोधी हैं।
मेरे एक मित्र संसद के बहुत पुराने सदस्य थे, उनको संसद का पिता कहा जाता था। मैं उनके घर मेहमान होता था। उनके घर मेहमानी एक मुसीबत थी। मुसीबत यह थी कि वे मेरे पिता के दोस्त थे। बुजुर्ग थे, वे मुझको भी न जाने देते थे, जब तक कि उनका हस्तरेखाविद... अब हस्तरेखाओं को देख कर ट्रेनों के टाइम टेबल नहीं बनते। ट्रेन को जाना है ग्यारह बजे और मुझे छह बजे सुबह से उठा कर वे स्टेशन पहुंचा देते। मैं उनसे कहताः क्या हद कर रहे हो? वे कहते कि छह बजे घर से निष्कासन है। गाड़ी कभी आए, मगर घर छह बजे छूटे तो शुभ होगा, नहीं तो अशुभ हो जाएगा। और मैं तुम्हारे पिता को क्या जवाब दूंगा? मैंने कहाः बड़ी मुसीबत है। और इतना ही होता कि वह मुझे छोड़ कर अपने वापस चले जाते, वह भी नहीं। वे मेरी खोपड़ी खाते वहीं बैठ कर। सुबह छह बजे से लेकर जब तक ट्रेन न आ जाए।

और कोई ट्रेन इस देश में वक्त पर आती नहीं। सिर्फ एक बार मैंने एक ट्रेन को वक्त पर आते देखा। हालांकि मैं कोई तीस साल से ट्रेनों में चलता रहा हूं निरंतर, मुल्क के कोने-कोने में, सिर्फ एक बार। तो मैं ड्राइवर को धन्यवाद देने गया कि यह मेरे जीवन का सौभाग्य है कि कम से कम एक बार तुमने ट्रेन को ठीक मिनट ब मिनट... । ड्राइवर ने कहा कि धन्यवाद देने के पहले जरा मेरी भी सुन लो। यह असल में कल की ट्रेन है। चौबीस घंटे लेट! मैंने कहाः सोचा था एक तो अनुभव हो जाता, वह भी न हुआ। उस ड्राइवर से मैंने कहाः तो क्यों फिजूल टाइम टेबल छापते हो--जब गाड़ियों को जब आना है, तब आना है। स्टेशन मास्टर पास ही खड़ा था, मुझसे बोला कि टाइम टेबल की बात मत करना। मैंने कहाः क्यों? उसने कहाः टाइम टेबल न छापेंगे तो पता कैसे चलेगा कि कौन ट्रेन कितनी लेट है। तुम और मुसीबत में डाल दोगे। टाइम टेबल का मतलब ही क्या है? यह ही मतलब है कि इससे पता चल जाता है कि यह ट्रेन बारह घंटे लेट है या चौदह घंटे लेट है या चौबीस घंटे लेट है, नहीं तो पता ही नहीं चलेगा कि कौन सी ट्रेन कब आई, कब गई; कहां गई; गई कि नहीं गई। टाइम टेबल छपेगा। मैंने कहाः अच्छा भैया, छपने दो टाइम टेबल।
सत्तर वर्ष के हो गए थे, बड़ी-बड़ी समस्याएं हल करने का मन में खयाल रखते थे। जुगल किशोर बिड़ला से उन्होंने मुझे मिलाया इस आशा में कि अगर जुगल किशोर बिड़ला को मेरी बातों में कोई रस और कोई रुचि आ जाए तो मेरे काम को धन की, अर्थ की कोई कमी न रह जाए। मैं कोई भी काम करूं, बिड़ला उस काम को आर्थिक सहारा दे दें। जुगल किशोर बिड़ला ने कहाः सिर्फ दो काम करने योग्य हैं। एक काम तो गौ-रक्षा। मैंने कहाः मारे गए। गौ-रक्षा मुझको नहीं करनी है। अपना धन आप अपने पास रखो। इधर आदमी मरने के करीब पहुंच रहा है, लेकिन जिनकी आंखें पीछे बंधी हैं, वे कहते हैं गौ-रक्षा! और दूसरी बात कि हिंदू धर्म का प्रचार करो--तो जितना धन चाहिए, खाली चेक-बुक देने को तैयार हूं। मैंने कहाः वह चेक-बुक आप अपने पास रखो। मैं धर्म का तो प्रचार कर सकता हूं, लेकिन हिंदू धर्म का नहीं। क्योंकि जैसे ही धर्म हिंदू हुआ कि धर्म नहीं रह जाता; मुस्लिम हुआ कि धर्म नहीं रह जाता; ईसाई हुआ कि धर्म नहीं रह जाता।
धर्म तो तभी तक धर्म होता है, जब तक उस पर कोई विशेषण नहीं होता। तब तक
वह एक खुले आकाश की सुगंध है, खुले तारों की रोशनी है।
तुम एक पक्षी को आकाश में उड़ते देखते हो--मन गदगद हो जाता है, उसके सौंदर्य को देख कर। इसी पक्षी को तुम पिंजरे में बंद कर लो सोने के और घर में टांग लो। शायद तुम सोचो कि यह वही पक्षी है। तुम गलती में हो। यह वही पक्षी नहीं है। उस पक्षी के पास पूरा आकाश था, इस पक्षी के पास सिवाय जंजीरों के और कुछ भी नहीं है। वह पक्षी जिंदा था, यह पक्षी सिर्फ नाममात्र को जिंदा है--श्वासें लेता है। वह पक्षी जिंदा ही क्या, जिसके पंखों को आजादी न हो।
धर्म आकाश में उड़ते हुए पक्षी की तरह मुक्त है।
तो मैंने जुगल किशोर को कहाः धर्म की तो बात मैं जीवन भर करूंगा, जीवन
की अंतिम श्वास तक करूंगा, लेकिन कोई विशेषण उस पर नहीं बैठने दूंगा।
विशेषण बैठा कि बात मरी। विशेषण आया कि पक्षी पिंजरे में बंद हुआ।
उन्होंने कहाः मुझे धर्म से कुछ नहीं लेना-देना--हिंदू धर्म, सनातन धर्म... मैंने कहाः आप अपना सनातन धर्म भी अपने पास रखो, अपनी चेक-बुक भी सम्हाल कर रखो।
इस देश को जिन चीजों से लगाव हो गया है सदियों में, उस लगाव को कोई भी तोड़ने चलेगा तो लगता है, दुश्मन है। इससे मुझे लोग न मालूम अनजाने में कैसे अपना दुश्मन समझ लेते हैं। मैं चला हूं उनके पिंजरे से उनको बाहर निकालने, वे मेरे ही हाथों को लहूलुहान कर देते हैं। वे पिंजड़े के बाहर निकलने को राजी नहीं हैं।
कौन ले जाएगा इस देश को इक्कीसवीं सदी में। राजनेता? नहीं, लेकिन अच्छा सपना देते हैं तुम्हें। ये सपनों के सौदागर हैं। तुम्हें सपने देते हैं, तुमसे नगद वोट लेते हैं। न सपने कभी पूरे होते हैं। पांच साल में फिर तुम भूल जाते हो। फिर नये सपने के सौदागर खड़े हो जाते हैं। फिर तुम इस आशा में कि शायद जो कल नहीं हुआ, अब हो जाए।

मगर राजनीति ने कभी भी मनुष्य को विकसित नहीं होने दिया है। राजनीति चाहती नहीं कि मनुष्य विकसित हो। क्योंकि जितना विकसित मनुष्य होगा, उतना ही उसे गुलाम बनाना मुश्किल है, उतना ही उसे स्वतंत्र होने से रोकना मुश्किल है, उतना ही उसे आज्ञाकारी बनाना मुश्किल है।

स्वतंत्रता क्रांति है।
और क्रांति ही केवल तुम्हें भविष्य में ले जा सकती है। एक आध्यात्मिक क्रांति--और उस क्रांति का सूत्र हैः ध्यान।

प्रश्नः आप जानते ही हैं कि भारत में क्रिकेट का खेल इस हद तक लोकप्रिय है कि लोग इसके पीछे दीवाने हो जाते हैं। इस विदेशी खेल के चलते भारत के अपने कई खेल उभर नहीं पाए। स्थिति यह है कि क्रिकेट के टेस्ट खिलाड़ी--नाम तो मैं लेना नहीं चाहता--भारत में पूजे जाते हैं, स्टार समझे जाते हैं। यानी राजनीति के बाद, अगर फिल्म के बाद सबसे ज्यादा कोई स्टेज पर हावी हैं तो ये ही खिलाड़ी हैं। लेकिन इस खेल की वजह से हिंदुस्तान के अपने कई खेल नहीं पनप पाए। इस दीवानगी को आप किस रूप में समझते हैं?

दीवानगी तो दीवानगी है; वह चाहे बाहर की हो, चाहे भारत की हो। सारी दुनिया में अलग-अलग खेल लोगों को दीवाना बनाते हैं। मगर मकसद एक है। कैलिफोर्निया में कैलिफोर्निया की युनिवर्सिटी ने पिछले वर्ष, एक वर्ष तक अध्ययन किया इस बात का कि जब भी वहां फुटबॉल के मैच होते हैं तो लोग बिल्कुल पागल हो जाते हैं। और सात दिनों तक, मैच के समाप्त हो जाने के बाद-- अपराधों में चौदह प्रतिशत बढ़ोतरी हो जाती है--ज्यादा हिंसाएं होती हैं, ज्यादा आत्महत्याएं होती हैं, ज्यादा रेप होते हैं। और फिर भी सरकार उन खेलों को चलने देगी!
उन खेलों को रोका नहीं जा सकता। और मैं भी नहीं कहूंगा कि रोको, क्योंकि उन खेलों में लोगों का जो बावलापन निकल जाता है, वह अगर न निकल पाए तो और भी ज्यादा बलात्कार होंगे, और भी ज्यादा हिंसाएं होंगी। खेल चाहे कोई भी हो--क्रिकेट का हो, कि फुटबॉल मैच हो, कि वालीबॉल हो, कि हाकी हो, तुम्हारे भीतर की हिंसा को निकालने का सुसंस्कृत रूप है। और जब तक आदमी के भीतर हिंसा है, क्रोध है, तब तक कोई बुराई नहीं है। मैं नहीं समझता कि--अगर क्रिकेट के खिलाड़ियों को लोग नेताओं की तरह, फिल्म स्टारों की तरह पूज्य स्थानों पर रखते हों--मुझे कोई एतराज नहीं है। मेरा एतराज यही है कि राजनेताओं का नंबर सबसे नीचे होना चाहिए।
फिल्मों के अभिनेता लोगों के मनों में दबाए गए प्रेम, दबाई गई भावनाओं--उन सबका रेचन करने में सहयोगी होते हैं। उन्हें इज्जत मिलनी चाहिए। और अभी-अभी यह दुर्भाग्य घटा है कि फिल्म के अभिनेताओं को राजनीति में पहुंचने का नशा चढ़ा है। यह गिराव है। यह उनकी इज्जत की ऊंचाई नहीं है। जब वे फिल्म अभिनेता थे तो एक कलाकार थे; अब, अब उनके जीवन में कोई कला नहीं है। उन्हें वापस लौट आना चाहिए। राजनीति में तो उन लोगों को भेजना चाहिए, जिनसे कुछ और हो ही न सकता हो। क्योंकि वहां करना ही कुछ नहीं है। क्रिकेट के खिलाड़ी भी, या फुटबॉल मैच, या और खेलों के खिलाड़ी वे सब भी तुम्हारे भीतर रेचन करते हैं, कैथार्सिस करते हैं; उनको खेलते देख कर तुम्हारे भीतर के बहुत से आवेग निकल जाते हैं।
रही भारतीय खेलों की बात, तो भारतीय खेलों में कोई भी ऐसा खेल नहीं है,
जो क्रिकेट या फुटबाल या हाकी के मुकाबले खड़ा हो सके। इसमें किसी का कसूर नहीं है। तुम लाख कबड्डी-कबड्डी करो, किसी को कुछ मजा नहीं आता। कबड्डी- कबड्डी तो लोग रोज अपने-अपने घरों में कर ही रहे हैं--पति पत्नी के साथ कबड्डी-कबड्डी। पूरा देश कबड्डी-खाना बना हुआ है। यहां और अब क्या कबड्डी करवाओगे? और कौन रस लेगा उसमें? कि यही तो घर में कर रहे हैं। अब इसको देखने कौन जाने वाला है? या गिल्ली-डंडा! भारतीय खेलों में कोई दम नहीं है। अब यह मजबूरी है, अब क्या करें? उसका कारण है कि भारतीय खेलों में दम क्यों नहीं है। हर चीज के पीछे वजह तो होती है।

भारतीय खेल बच्चों के खेल थे। भारत में जवानी आ ही नहीं पाती थी, क्योंकि हम जल्दी से विवाह कर देते थे। मेरी मां यहां मौजूद हैं, उनकी शादी सात साल में हो गई थी। तब मेरे पिता की उम्र बारह साल की रही होगी।
बारह साल की उम्र में शादी हो जाए तो अब घर-गृहस्थी की फिकर करें कि फुटबाल खेलें, कि क्रिकेट खेलें।
भारतीय खेल छोटे-छोटे बच्चों के खेल हैं।
पाश्चात्य खेल जवानों के खेल हैं।
पश्चिम में जवानी आई, क्योंकि विवाह की उम्र रेखा ऊपर उठती गई। अब लोग पच्चीस साल में, छब्बीस साल में, तीस साल की उम्र में विवाह करते हैं। चौदह साल की उम्र में युवक विवाह के योग्य हो जाते हैं। उनके भीतर ऊर्जा और शक्ति का अवतरण होता है। अब वे बच्चों को जन्म दे सकते हैं। तेरह साल की उम्र में लड़कियां मां बनने के योग्य हो जाती हैं। लेकिन उनको रुकना पड़ेगा, अभी पंद्रह साल तक। यह पंद्रह साल की जवानी, कहीं इसका निष्कासन होना चाहिए। इसलिए पश्चिम के खेल जवानों के खेल हैं। और उनका रस और है।
भारत के खेल घुनघुने हैं। अब तुम नाहक घुनघुनों को, सिर्फ भारतीय हैं, इसलिए सिर पर उठाए फिरो तो तुम्हारी मर्जी। भारतीयों के पास कोई जवानी का खेल नहीं है।
और बहुत जल्द तुम इस बात को खयाल में लेना कि खेलों की भी उम्र होती है। जिस देश में लोग ज्यादा जीते हैं, वहां कुछ और खेल भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं। जैसे शतरंज--ये बूढ़ों के खेल हैं, जवानों के नहीं। ये उनके खेल हैं, जिनको अब कुछ करने को बचा नहीं। सब कर चुके। अब एक और नालायकी बची है, यह और कर लें, फिर संसार से छुटकारा है। फिर मोक्ष में--न कबड्डी है, न शतरंज है। खेलों की भी उम्र है। जिस देश में औसत उम्र कम होती है, वहां इस तरह के खेलों की भी कोई बहुत बड़ी प्रशंसा नहीं होती और न प्रसार होता है। मगर मैं यह कहना चाहूंगा कि खेलों के कारण अगर लोग सम्मान देते हों किसी को, अभिनय के कारण किसी को सम्मान देते हों, संगीत के कारण किसी को सम्मान देते हों--जैसे बीटलों को सम्मान मिला सारी दुनिया में... । संगीत कोई महान न था, जवानों का था। शास्त्रीय न था, शास्त्रीय संगीत के लिए बुढ़ापा चाहिए। एक उम्र चाहिए, लंबी उम्र कि शास्त्रीय संगीत को समझा जा सके। बीटल और उनके बाद आने वाले दूसरे संगीतज्ञ पश्चिम में उछल-कूद कर रहे थे। वह कोई न तो नाच था, न कोई संगीत था, लेकिन जवानों को उसकी जरूरत थी। उस उछल-कूद से उनके भीतर के आवेग निकल जाते थे। नहीं तो यही आवेग अपराध बन जाएंगे।
हर स्कूल में व्यवस्था होनी चाहिए कि लोगों के आवेग निकल जाएं। हमारे मुल्क में यह समस्या है कि लड़के हड़ताल करते हैं, पत्थर फेंकते हैं, शिक्षकों को सताते हैं, स्कूलों में आग लगाते हैं। जिम्मेवार हम हैं। हम उनके वेगों को निकलने का कोई समुचित उपाय नहीं देते। इसके पहले कि वे पत्थर मारें--यही हाथ जो पत्थर मारते हैं और पत्थर मार कर एक तरह की शांति अनुभव करते हैं, यही हाथ वालीबॉल से भी खेल सकते हैं। और वालीबॉल से भी इनको वही शांति मिल जाएगी। और स्कूल के कांच भी बच जाएंगे। स्कूल की दीवालें भी बच जाएंगी। स्कूल के शिक्षक भी बच जाएंगे।
खेलों का मनोविज्ञान है।
और मनोविज्ञान यही है कि हमारे भीतर दबे हुए आवेग उनके माध्यम से बह जाते हैं, हम भीतर थोड़े हलके हो जाते हैं।
पश्चिम के खेल भारत के खेलों को बढ़ने से रोक रहे हैं, ऐसा नहीं है। भारत के पास जवानों के खेल ही नहीं हैं। क्योंकि भारत में जवानी अभी-अभी आई है। और वह भी पश्चिम के जरिए आई है, उनकी शिक्षण व्यवस्था से आई है, इसलिए उन्हीं के खेलों को दोहराती है। भारत के पास सिर्फ छोटे बच्चों के खेल हैं। उन खेलों को कोई इतना बड़ा रूप नहीं दिया जा सकता कि किसी आदमी को तुम एक स्टार बना दो। क्योंकि ये गिल्ली-डंडा खेलने में बड़े होशियार हैं। लोग सिर्फ हंसेंगे उनको देख कर कि भैया, तुम्हें कुछ और नहीं सूझता करने को? गिल्ली-डंडा! ये छोटे-छोटे बच्चे खेलते हैं, खेलने दो, तुम कुछ और करो। इसमें कुछ भारत का सवाल नहीं है। इसमें सवाल है उम्र और उम्र की अलग-अलग पीढ़ियों का।

भारत में सदियों से हमने जवानी को कभी आने ही नहीं दिया। इसलिए जवानी
की बहुत सी चीजें भारत में कभी पैदा ही नहीं हुईं। छोटे से बच्चे की शादी कर दी, इसलिए भारत में प्रेम-विवाह का सवाल ही न उठा। सवाल कहां से उठे? प्रेम-विवाह का सवाल तो तब उठे, जब हम बच्चों की शादी न करें, उन्हें जवान होने दें, उनके भीतर प्रेम की ऊर्जा जगने दें और मौका दें उन्हें कि स्त्री और पुरुष मिल सकें। तो प्रेम-विवाह का सवाल उठेगा। तो प्रेम का सवाल उठेगा। यहां तो हम इतने बचपन में शादी कर देते थे कि पत्नी और पति करीब-करीब भाई-बहन की तरह बड़े होते थे। संस्कृत का पुराना शब्द है भगिनी। उसके दोनों मतलब होते हैं--पत्नी भी और बहन भी। वह शब्द बड़ा प्यारा है। वह इस बात का सूचक है कि इतनी जल्दी शादी हो जाती थी कि अभी पता भी नहीं था कि पत्नी और पति इनका भी कोई नाता होता है। ज्यादा से ज्यादा भाई-बहन। जैसे और भाई-बहन थे, वैसी यह भी एक बहन और घर में आ गई। इसके साथ बड़े होते थे। साथ-साथ जवान होते थे। मौका ही न मिलता था कि इधर-उधर चौपाटी वगैरह पर जाएं, क्योंकि यह बहन साथ ही साथ चौपाटी जाती है। दूसरे भैया भी वहां होते, मगर उनकी बहनें भी होतीं।
हमने हजारों साल तक जवानी को आने ही नहीं दिया। और साथ ही साथ बच्चों
को छह-सात साल, आठ साल का बच्चा हुआ कि वह मां-बाप के साथ काम में लग जाता। खेत जाने लगता, बढ़ईगिरी करने लगता, जूता सीने लगता, दुकान पर बैठने लगता। कुछ भी करता, मां-बाप की सहायता करता। उसे पता ही नहीं चलता कि कभी जवानी के दिन भी आए और गए। उसके बचपन में और उसके बुढ़ापे के बीच जवानी की कोई जगह न थी, कोई खाली जगह न थी।
यह तो आधुनिक शिक्षा का परिणाम है, जो पश्चिम से आई। और अच्छा है कि आई, क्योंकि इसने एक नया वर्ग पैदा किया जवान का, और जवानी के नये रंग, नये रूप पैदा किए। खेल जवानों के अपने होंगे। साहित्य जवानों का अपना होगा। फिल्में जवानों की अपनी होंगी। गीत जवानों के अपने होंगे। एक पूरा आयाम खुल गया, जो बिल्कुल नया है। और चूंकि पश्चिम से आया है, हमारे पास उसके मुकाबले में कुछ भी न था, इसलिए यह मत सोचो कि उसने कुछ दबाया है। उसने कुछ भी नहीं दबाया है, उसने सिर्फ एक खाली जगह को पैदा किया है। और खाली जगह में वही आया, जो पश्चिम से आना संभव था।
अब जैसे हमने इस देश में कभी विज्ञान की कोई खोज नहीं की। जो भी विज्ञान आ रहा है, पश्चिम से आ रहा है। उस विज्ञान के साथ-साथ जो भी अच्छाई आएगी, बुराई आएगी, वह भी पश्चिम से आएगी। यह मत कहना कि हमारा कुछ दबा कर... हमारे पास कुछ था ही नहीं, विज्ञान के नाम पर हम खाली और सूने हैं। पश्चिम से विज्ञान आ रहा है।
और हर चीज के पहलू होते हैं। उसके अच्छे पहलू हैं, उसके बुरे पहलू हैं। अब समझो कि पश्चिम से बर्थ कंट्रोल आया कि आदमी चाहे तो बच्चे पैदा करे या चाहे तो न पैदा करे। अब इसका अच्छा परिणाम हो सकता है कि हम देश की आबादी को कम कर लें और देश की खुशहाली को बढ़ा लें। और इसका दूसरा परिणाम यह भी हो सकता है कि हम देश को वेश्याओं से भर दें, और देश की सारी नैतिकता को नष्ट कर दें, क्योंकि अब तुम्हारी पत्नी पड़ोसी के साथ मेलजोल रखती है, इसका तुम पता नहीं लगा सकते। अब तुम पक्का नहीं कर सकते कि यह बेटा तुम्हारा ही है। यह हमारे हाथ में है। विज्ञान तो तटस्थ है। उसका उपयोग हम कैसे करते हैं, यह हम पर निर्भर करेगा।
ये खेल भी तटस्थ हैं। इनका हम कैसे उपयोग करते हैं, यह भी हम पर निर्भर करेगा। और हमें हर चीज का सम्यक उपयोग करने की दृष्टि पैदा करनी चाहिए। हर चीज का ऐसा उपयोग किया जा सकता है कि इस देश की अंतरात्मा को, जो हजारों साल के कूड़े-कचरे से दबी है, हम गंगा स्नान करवा सकते हैं।

धन्यवाद।

फिर अमरित की बूंद पड़ी
पांचवां प्रवचन

भारतः एक सनातन यात्रा

प्रश्नः प्यारे ओशो, वह कौन सा सपना है, जिसे साकार करने के लिए आप तमाम रुकावटों और बाधाओं को नजरअंदाज करते हुए पिछले पच्चीस-तीस वर्षों से निरंतर क्रियाशील हैं?

हर्षिदा! सपना तो एक है, मेरा अपना नहीं, सदियों पुराना है, कहें कि सनातन है। पृथ्वी के इस भूभाग में मनुष्य की चेतना की पहली किरण के साथ उस सपने को देखना शुरू किया था। उस सपने की माला में कितने फूल पिरोए हैं-- कितने गौतम बुद्ध, कितने महावीर, कितने कबीर, कितने नानक, उस सपने के लिए अपने प्राणों को निछावर कर गए। उस सपने को मैं अपना कैसे कहूं? वह सपना मनुष्य का, मनुष्य की अंतरात्मा का सपना है। उस सपने को हमने एक नाम दे रखा था। हम उस सपने को भारत कहते हैं। भारत कोई भूखंड नहीं है। न ही कोई राजनैतिक इकाई है, न ऐतिहासिक तथ्यों का कोई टुकड़ा है। न धन, न पद, न प्रतिष्ठा की पागल दौड़ है।
भारत है एक अभीप्सा, एक प्यास--सत्य को पा लेने की।
उस सत्य को, जो हमारे हृदय की धड़कन-धड़कन में बसा है। उस सत्य को, जो हमारी चेतना की तहों में सोया है। वह जो हमारा होकर भी हमें भूल गया है।
उसका पुनर्स्मरण, उसकी पुनरुद्घोषणा भारत है।
"अमृतस्य पुत्रः! हे अमृत के पुत्रो!" जिन्होंने इस उदघोषणा को सुना,
वे ही केवल भारत के नागरिक हैं। भारत में पैदा होने से कोई भारत का नागरिक नहीं हो सकता।
जमीन पर कोई कहीं भी पैदा हो, किसी देश में, किसी सदी में, अतीत में या भविष्य में, अगर उसकी खोज अंतस की खोज है, वह भारत का निवासी है। मेरे लिए भारत और अध्यात्म पर्यायवाची हैं। भारत और सनातन धर्म पर्यायवाची हैं। इसलिए भारत के पुत्र जमीन के कोने-कोने में हैं। और जो एक दुर्घटना की तरह केवल भारत में पैदा हो गए हैं, जब तक उन्हें अमृत की यह तलाश पागल न बना दे, तब तक वे भारत के नागरिक होने के अधिकारी नहीं हैं।
भारत एक सनातन यात्रा है, एक अमृत-पथ है, जो अनंत से अनंत तक फैला हुआ है।
इसलिए हमने कभी भारत का इतिहास नहीं लिखा। इतिहास भी कोई लिखने की बात है! साधारण सी दो कौड़ी की रोजमर्रा की घटनाओं का नाम इतिहास है। जो आज तूफान की तरह उठती हैं और कल जिनका कोई निशान भी नहीं रह जाता। इतिहास तो धूल का बवंडर है। भारत ने इतिहास नहीं लिखा। भारत ने तो केवल उस चिरंतन की ही साधना की है, वैसे ही जैसे चकोर चांद को एकटक बिना पलक झपे देखता रहता है।
मैं भी उस अनंत यात्रा का छोटा-मोटा यात्री हूं। चाहता था कि जो भूल
गए हैं, उन्हें याद दिला दूं; जो सो गए हैं, उन्हें जगा दूं। और भारत अपनी आंतरिक गरिमा और गौरव को, अपनी हिमाच्छादित ऊंचाइयों को पुनः पा ले। क्योंकि भारत के भाग्य के साथ पूरी मनुष्यता का भाग्य जुड़ा हुआ है। यह केवल किसी एक देश की बात नहीं है।
अगर भारत अंधेरे में खो जाता है, तो आदमी का कोई भविष्य नहीं है।
और अगर हम भारत को पुनः उसके पंख दे देते हैं, पुनः उसका आकाश दे देते हैं, पुनः उसकी आंखों को सितारों की तरफ उड़ने की चाह से भर देते हैं तो हम केवल उनको ही नहीं बचा लेते हैं, जिनके भीतर प्यास है। हम उनको भी बचा लेते हैं, जो आज सोए हैं, लेकिन कल जागेंगे; जो आज खोए हैं, लेकिन कल घर लौटेंगे। भारत का भाग्य मनुष्य की नियति है।
क्योंकि हमने जैसा मनुष्य की चेतना को चमकाया था और हमने जैसे दीये उसके भीतर जलाए थे, जैसे फूल हमने उसके भीतर खिलाए थे, जैसी सुगंध हमने उसमें उपजाई थी, वैसी दुनिया में कोई भी नहीं कर सका था। यह कोई दस हजार साल पुरानी सतत साधना है, सतत योग है, सतत ध्यान है। हमने इसके लिए और सब

कुछ खो दिया। हमने इसके लिए सब कुछ कुर्बान कर दिया। लेकिन मनुष्य की अंधेरी से अंधेरी रात में भी हमने आदमी की चेतना के दीये को जलाए रखा है, चाहे कितनी ही मद्धिम उसकी लौ हो गई हो, लेकिन दीया अब भी जलता है।
मैंने चाहा था कि वह दीया फिर अपनी पूर्णता को ले और क्यों एक के भीतर जले, क्यों न हर आदमी प्रकाश का एक स्तंभ बने।
दुनिया की किसी भाषा में मनुष्य के लिए "मनुष्य" जैसा शब्द नहीं है। अरबी और अरबी से उपजी भाषाओं में, हिबू्र और हिबू्र से उपजी भाषाओं में, जो भी शब्द हैं, उनका मतलब होता हैः मिट्टी का पुतला। "आदमी" का मतलब होता हैः मिट्टी का पुतला। "मैन" का मतलब होता हैः मिट्टी का पुतला। सिर्फ "मनुष्य" में इस बात की स्वीकृति है कि तुम मिट्टी के पुतले नहीं हो, तुम चैतन्य हो, तुम अमृतधर्मा हो, तुम्हारे भीतर जीवन की परम ज्योति है। मिट्टी का दीया हो सकता है, ज्योति मिट्टी नहीं होती। यह शरीर मिट्टी का होगा, लेकिन इस शरीर के भीतर जो जाग रहा है, जो चैतन्य है, वह मिट्टी नहीं है। जब कि सारी दुनिया मिट्टी की खोज में लग गई, तब कुछ थोड़े से लोग ज्योति की तलाश में संलग्न रहे।
हर्षिदा, "तू पूछती है कि आपका क्या सपना है?"
वही जो बुद्धों का सदा से रहा है। जो भूल गया है, वह याद दिलाया जाए; जो सोया है, उसे जगाया जाए; क्योंकि जब तक आदमी यह न समझ ले कि शाश्वत जीवन उसका अधिकार है, ईश्वरत्व उसका जन्मसिद्ध हक है, तब तक आदमी पूरा नहीं हो पाता, अधूरा और अपंग रह जाता है।
जब से मैंने होश सम्हाला है, हर पल, हर घड़ी एक ही प्रयत्न और एक ही प्रयास, अहर्निश एक ही चेष्टा कि किसी तरह तुम्हारी भूली संपदा की तुम्हें याद दिला दूं, कि तुम्हारे भीतर से भी अनलहक की आवाज उठे, कि तुम भी कह सको अहं-ब्रह्मास्मि, मैं ईश्वर हूं।
ईश्वर की बातें दुनिया के कोने-कोने में हुई हैं, लेकिन ईश्वर सदा दूर, बहुत दूर, आसमानों के पार रहा है। केवल हमने ईश्वर को आदमी के भीतर प्रतिष्ठित किया है। केवल हमने ईश्वर को आदमी के भीतर बिठा कर आदमी को मंदिर बनने की क्षमता, सौंदर्य, महिमा दी है।
कैसे हर आदमी मंदिर बन जाए और कैसे हर आदमी का हर क्षण प्रार्थना बन जाए, इसे ही तुम मेरा सपना कह सकती हो।

प्रश्नः प्यारे ओशो, धरती पर स्वर्ग उतारने की आकांक्षा आपको अमेरिका
ले गई और वहां पर आपने संपूर्ण मानवता के सदियों-सदियों पुराने सपने को साकार कर दिखाया। क्या आप हम भारतवासियों को रजनीशपुरम की उपलब्धियों को बताने की अनुकंपा करेंगे?

भारत को भारत की याद दिलाने के लिए भारत के बाहर जाना जरूरी था। जो बहुत पास होता है, वह भूल जाता है। जो अपना होता है, उसकी हम सुनते ही नहीं। जो घर में ही होता है, उसकी खोज कौन करता है!
इधर बीस वर्षों तक मैं भारत के कोने-कोने में घूमता रहा और बीस वर्षों में जो पाया, वह सिर्फ छाती में लगे घाव हैं। क्योंकि मैं जिन्हें जगाने जा रहा था, वे अपने गहरे सपनों में थे। और कोई भी पसंद नहीं करता कि उसकी नींद तोड़ो, और कोई भी पसंद नहीं करता कि उसके सपने में विघ्न डालो। पत्थर मुझ पर फेंके गए, हत्या करने की कोशिश की गई, लेकिन यह सब मुझे स्वीकार था। और मैं समझता था कि यह होना आवश्यक है। लेकिन इससे मैं दुखी न था। एक बात से जरूर दुखी था और वह बात, जिन्होंने पत्थर फेंके या जिन्होंने छुरे फेंके या जिन्होंने जहर पिलाने की कोशिश की, उनकी नहीं है। वह बात उन लोगों की है, जिन्होंने मेरी बातों को सुन कर वाह-वाह की। उन्होंने जो घाव दिए हैं, वे अब भी हरे हैं, भरने का नाम नहीं लेते, क्योंकि वे वाह-वाह इसलिए नहीं कर रहे थे कि मैं जो कह रहा हूं, वह सत्य है। वे वाह-वाह इसलिए कर रहे थे कि मैं जो कह रहा हूं, वह उनके अहंकार की पूर्ति कर रहा है। मैं जो कह रहा था उसे वे जीवन में उतारने को राजी न थे। मैं जो कह रहा था, वे सिर्फ ताली बजा कर अपना मनोरंजन कर रहे थे, आह्लादित हो रहे थे; अपनी दीनता, अपनी हीनता, अपनी गरीबी, अपनी गुलामी को छिपाने के लिए मेरे शब्द

उनका सहारा बनने लगे। इसलिए मुझे बाहर जाना पड़ा, कि शायद दूर से दी गई आवाज, उन्हें सुनाई पड़ जाए। और शायद दूर अमरीका में मैं कोई प्रयोग करके एक छोटे से भारत का निर्माण कर सकूं।
और अमरीका को चुना इसलिए कि भारत ने जो महान ऊंचाइयां पाई थीं, वे तब पाई थीं, जब भारत समृद्ध था। वे तब पाई थीं, जब दुनिया भारत को सोने की चिड़िया कहती थी। वे कोई दीन-दरिद्र, भिखमंगे और गरीब और गुलाम भारत की ऊंचाइयां नहीं थीं। खाने को रोटी भी न हो तो पंखों को आकाश में खोलना और तारों की तरफ उड़ान भरने की आकांक्षा करना संभव नहीं है। फिर अमरीका में पृष्ठभूमि तैयार थी, लोग समृद्धि की उसी ऊंचाई पर पहुंच गए हैं, जहां कभी हम थे। और जो हमने पाया था समृद्धि की ऊंचाई पर कि धन सब कुछ खरीद सकता है, लेकिन प्रेम नहीं, परमात्मा नहीं। धन सब कुछ खरीद सकता है, लेकिन आनंद नहीं, अमृत का स्वाद नहीं। धन सब कुछ खरीद सकता है, लेकिन ध्यान नहीं, शांति नहीं, मौन नहीं। धन पाकर ही आदमी को पता चलता है कि धनिक होने से ज्यादा गरीब इस दुनिया में कोई और नहीं है। सब कुछ होते हुए भीतर कुछ भी नहीं होता। खालीपन, अर्थहीनता, एक गहरा संताप कि सब कुछ मेरे पास है और फिर भी मेरे पास कुछ भी नहीं है। अमरीका उस घड़ी में है। अमरीका को जरूरत है कि कोई उसे कहे, धन के पार भी एक जगत है, जो केवल धनिक ही पा सकता है। क्योंकि उस जगत को पाने के लिए धन ही सीढ़ी बनता है। वह धन से नहीं पाया जाता। धन को पैरों के तले रौंद कर पाया जाता है। इसलिए अमरीका को चुना था।
और पांच वर्षों में, एक बहुत छोटे से समय में, जिस सपने को लेकर मैं गया था, वह पूरा भी हुआ। एक मरुस्थल को--बड़ा मरुस्थल था--एक सौ छब्बीस वर्गमील, जहां कभी कोई फूल नहीं खिला था। जिस दिन मैं उस मरुस्थल में पहुंचा, वहां एक भी पक्षी नहीं था। उस मरुस्थल को पांच वर्षों में मरूद्यान में बदल देने की चेष्टा की। पांच हजार संन्यासियों को लेकर-- बारह घंटे, चौदह घंटे, प्रत्येक संन्यासी ने श्रम किया। जो जिसके पास था, धन था तो धन, तन था तो तन, सब कुछ दांव पर लगा दिया। मरुस्थल का नया जन्म हो गया, मरूद्यान बन गया। दूर-दूर से पक्षी आ गए। जंगली जानवर आ गए। हजारों हिरन मरुस्थल में आ गए। पांच हजार संन्यासियों के लिए रहने के लिए हमने मकान बनाए। अपने ही हाथों से। अमेरिका में हमने किसी की कोई सहायता नहीं ली। रास्ते बनाए, झीलें बनाईं। हंसों को निमंत्रण दिया। झीलें बनीं तो हंस भी आ गए। बगीचे लगाए तो हिरन भी आ गए। सिर्फ मेरे बगीचे में तीन सौ मोरपंख... तीन सौ मोर! वर्षा के प्रारंभ में जब वे नाच उठते, तो सारी दुनिया के रंग--सारी दुनिया का उत्सव... ।
एक चौके में पांच हजार संन्यासी भोजन कर रहे थे। क्योंकि मेरी धारणा
थी कि छोटे-छोटे परिवार का जमाना अब गया। अब हमें आदमी के बड़े परिवार चाहिए, कम्यून चाहिए। और पांच हजार संन्यासियों का एक साथ भोजन के लिए बैठना और किसी का गिटार पर गीत गाना और किसी का नाचना। और उत्सव के दिनों में तो बीस हजार संन्यासी सारी दुनिया से वहां इकट्ठे होते थे। उनके लिए हमने अपने हाथ से तंबू बनाए थे। और ऐसे तंबू बनाए थे जैसे तंबू कभी बनाए नहीं गए थे। वे तंबू वर्षा में, बर्फ में, धूप में, सर्दी में--हर मौसम में काम आ सकते थे। उन तंबुओं में एअरकंडीशनर लगाए जा सकते थे। उन तंबुओं में हीटर लगाए जा सकते थे। पांच हजार संन्यासियों के लिए जो मकान थे, वे सब सेंट्रली एअरकंडीशंड थे।
और सुख-सुविधाओं की जितनी व्यवस्था हो सकती थी--पांच हजार संन्यासियों के लिए--पांच सौ कारें थीं, पांच एरोप्लेन थे, सौ बसें थीं, अस्पताल था अपना, अपने डाक्टर थे, अपनी नर्सें थीं, स्कूल था, अपने शिक्षक थे; बच्चों के रहने का अलग इंतजाम था, बच्चों की अलग दुनिया थी। सुबह ध्यान के साथ काम शुरू होता। ध्यान के बाद एक घंटा मेरे साथ या तो मौन-सत्संग में बैठते या मैं कुछ बोलता तो सुनते।
और फिर दिन भर काम था और फिर सांझ उत्सव था। देर रात तक लोग नाचते- गाते। पहली बार संभवतः पांच हजार लोग पांच वर्षों तक एक साथ रहे। कोई किसी से लड़ा नहीं। कोई चोरी नहीं हुई। किसी के जीवन में न कोई चिंता थी, न कोई भविष्य की सुरक्षा का प्रश्न था, क्योंकि भरोसा था पांच हजार साथी और करीब दस लाख संन्यासी सारी पृथ्वी पर अपने हैं, जो हर सुख और दुख में साथ देंगे।

एक विश्व परिवार का निर्माण अमरीका बरदाश्त न कर सका। और जब मैं कहता हूं, अमरीका बरदाश्त न कर सका, तो मेरा मतलब है, अमरीका के राजनीतिज्ञ, अमरीका की सरकार बरदाश्त न कर सकी। अमरीका की जनता तो बहुत प्रभावित थी। उन्हें तो भरोसा भी नहीं आता था कि इस रेगिस्तान में, जहां कभी कुछ पैदा नहीं हुआ, वहां खेती-बाड़ी हो रही है, फल-फूल पैदा किए जा रहे हैं। हम अपनी सारी जरूरतें उस रेगिस्तान से पैदा कर रहे थे। भोजन शाक-सब्जी, फल-फूल, अपनी गौशाला, अपना दूध, अपना मक्खन, अपना घी, जो हमें जरूरी था।
और इस प्रयोग के साथ एक नई बात मैंने जोड़ी थी, वह थी, क्योंकि संन्यासी शाकाहारी हैं और शाकाहार पूर्ण भोजन नहीं है, उसमें कुछ कमी है और उसकी कमी खतरनाक कमी है। उसमें उन प्रोटीनों की कमी है, जिनसे मस्तिष्क निर्मित होता है। इसलिए किसी शाकाहारी को अब तक नोबल प्राइज नहीं मिल सका। इस कमी को पूरा करने के लिए हमने हजारों मुर्गियां पाल रखी थीं। और अगर मुर्गियों के अंडे बिना मुर्गों के संसर्ग के पैदा हों, तो उनमें प्राण नहीं होते, उनसे बच्चे पैदा नहीं हो सकते। लेकिन उनमें वे सब प्रोटीन होते हैं, जिनकी शाकाहारी भोजन में कमी है। इसलिए प्रत्येक संन्यासी को शाकाहारी भोजन में अनफर्टिलाइज्ड अंडों को जोड़ना एक नूतन प्रयोग था, जो कि सारी दुनिया के शाकाहारियों को आज नहीं तो कल करना पड़ेगा, अन्यथा तुम बौद्धिक रूप से पिछड़ते जाओगे, पिछड़ते जाओगे।
दूर-दूर से अमरीका में लोग देखने आने लगे और अमरीका के राजनीतिज्ञों
को परेशानी पड़ने लगी, क्योंकि उनसे यह पूछा जाने लगा कि बाहर से आए हुए अजनबी लोग रेगिस्तान को स्वर्ग बना सकते हैं तो अमरीका में इतनी समृद्धि होते हुए भी लाखों भिखारी हैं, जिनके पास न घर है, न कपड़े हैं, न खाने को भोजन। जो सड़कों पर ही जीते हैं। और चूंकि मैंने उनमें से दो सौ भिखारियों को कम्यून में सम्मिलित कर लिया, अमरीकी राजनीतिज्ञों को और भी धक्का लग गया, कि जिन भिखारियों को वे भोजन नहीं दे सकते, उन भिखारियों को हमने मनुष्य होने का गौरव दे दिया। उनके साथ कोई भेदभाव न था। उनके लिए वही आदर था, वही सम्मान था, जो प्रत्येक मनुष्य के लिए होना चाहिए। वे विश्वास भी न कर सके। मुझसे आकर भिखारियों ने कहा कि हमें भरोसा नहीं आता, क्योंकि जीवन भर हम कुत्तों की तरह ठुकराए गए हैं। हम मनुष्य हैं, यह बात भी हमें भूल चुकी थी।
सारे अमरीका के पत्रकार, टेलीविजन, रेडियो, कम्यून पर आ-आ कर छाने लगे। सारा अमरीका उत्सुक हो गया कि क्या, कौन सी क्रांतिकारी घटना घटी। कम्यून में किसी मुद्रा का कोई चलन न था। पैसे का कोई व्यवहार न था। इसलिए मैं कह सकता हूं कि वह कम्यून, रजनीशपुरम, इतिहास में पहली साम्यवादी व्यवस्था थी, जहां कोई अमीर न था, कोई गरीब न था। होंगे तुम्हारे पास करोड़ों रुपये, लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है, कम्यून में रुपये का उपयोग ही नहीं हो सकता। कम्यून में प्रत्येक व्यक्ति की जरूरत पूरी की जाएगी। जो भी जरूरत हो वह ले ले, लेकिन न तो कोई चीज खरीदी जाएगी, न कोई चीज बेची जाएगी।
अमरीकी राजनीति को दोहरी परेशानियां पैदा हो गईं। एकः कि साम्यवाद का शुद्धतम रूप जो कि सोवियत रूस में भी नहीं है। और दूसराः कि सिर्फ श्रम और बुद्धि के आधार पर रेगिस्तान को मरुस्थल से मरूद्यान में बदला जा सकता है। और एक ऐसे समाज का निर्माण किया जा सकता है जहां कोई दुखी नहीं है, जहां कोई पागल नहीं है, जहां कोई आत्महत्या नहीं करता है, जहां कोई खून नहीं होता है। जहां कोई चोरी नहीं, कोई अपराध नहीं, जहां कोई झगड़ा नहीं। कोई हिंदू या मुसलमान का, ईसाई या यहूदी का कोई उपद्रव नहीं। जहां सारी जातियों के लोग हैं, सारे धर्मों के लोग हैं, जहां काले लोग हैं, गोरे लोग हैं, जहां करीब-करीब प्रत्येक देश के लोग हैं, लेकिन किसी को किसी से कोई ऊंच-नीच का भाव नहीं। ऐसी समता, ऐसा साम्यवाद--अमरीकी राजनीतिज्ञ के दिमाग में एक बात बैठ गई कि इस कम्यून का बना रहना खतरे से खाली नहीं है।
और यह बात अभी अमरीका के अटर्नी जनरल के मुंह से अचानक निकल गई है। एक पत्रकार कांफ्रेंस में उत्तर देते हुए। चूंकि उनसे पूछा गया था कि भगवान को क्यों आपने जेल में बंद नहीं किया? क्योंकि मेरे ऊपर उन्होंने एक सौ छत्तीस जुर्म लगाए थे। जिस आदमी पर एक सौ छत्तीस जुर्म लगाए हों, उसको सजा

मिलनी चाहिए। कम से कम हजार साल की सजा तो मिलनी ही चाहिए--कम से कम। कम से कम दस-बारह जन्म लेना पड़ेंगे, तब पूरी हो सकेगी। अटर्नी जनरल के मुंह से जो कि कानून का सबसे बड़ा अधिकारी है, सच्ची बात निकल गई। और यही व्यक्ति, एक सौ छत्तीस जुर्म मैंने किए हैं, यह अदालत में पेश करने वाला था। उसने तीन बातें कहीं--एकः कि हमारा पहला मकसद कम्यून को नष्ट करना था। कोई पूछे, क्यों? कम्यून ने किसी का क्या बिगाड़ा था? कम्यून को अमरीका से कोई मतलब ही न था। निकटतम अमरीकी गांव कम्यून से बीस मील के फासले पर था। हमारे पास इतनी बड़ी जमीन थी और बाहर जाने की किसी को न फुरसत थी, न जाने की कोई जरूरत थी। कम्यून को मिटाना प्राथमिक उद्देश्य था।
नंबर दोः भगवान को जेल में बंद नहीं किया जा सकता था, क्योंकि उन्होंने कोई अपराध नहीं किया और हमारे पास किसी भी अपराध के लिए कोई सबूत नहीं है।
आदमी भी इतना पाखंडी हो सकता है, जिसका कोई हिसाब नहीं। यही आदमी एक
सौ छत्तीस जुर्म लेकर अदालत में खड़ा होता है और यही आदमी यह भी कहने को तैयार है कि इसके पास न कोई सबूत है किसी जुर्म का और न ही कोई अपराध हुआ है।
और तीसरी बात और भी विचारणीय हैः कि हम भगवान को जेल में बंद करके शहीद नहीं बनाना चाहते थे, क्योंकि उनके शहीद बनते ही उनका संन्यास दुनिया में एक प्रगाढ़ धर्म बन जाता।
बिल्कुल गैर-कानूनी ढंग से कम्यून को नष्ट कर दिया गया। मुझे गैर-कानूनी ढंग से गिरफ्तार किया गया, बिना किसी वारंट के, क्योंकि उनके पास कोई कारण नहीं था गिरफ्तार करने के लिए।
गिरफ्तारी के बाद जो कि प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है कि वह अपने अटर्नी को खबर करे। मुझे अटर्नी को खबर नहीं करने दी गई। क्योंकि अटर्नी आते से ही पूछेगा कि वारंट कहां है? किस आधार पर मुझे अरेस्ट किया गया है? मुझे अरेस्ट किया गया बारह संगीनों के आधार पर। किसी गिरफ्तारी के लिए कोई कारण नहीं, बल्कि बारह बंदूकें भरी हुईं! और अदालत के सामने मुझे पेश किया गया। यही अटर्नी जनरल सिद्ध करने में असमर्थ रहे और इन्होंने अदालत में स्वीकार किया तीन दिन के निरंतर विवाद के बाद। मेरे साथ पांच और संन्यासी गिरफ्तार किए गए थे। उन पांचों को बेल पर छोड़ दिया गया, लेकिन अटर्नी जनरल इस बात पर अड़े थे कि मुझे बेल नहीं दी जा सकती। और खुद उन्होंने स्वीकार किया अदालत में कि हम सिद्ध करने में असमर्थ हैं कि बेल क्यों न दी जाए। लेकिन फिर भी अमरीकी सरकार की तरफ से मैं यह प्रार्थना करता हूं जज से कि बेल न दी जाए। जज ने बेल नहीं दी!
खुद जेलर हैरान हुआ, जो मुझे वापस जेल लाया, क्योंकि वह सोच भी नहीं सकता था कि मुझे वापस जेल लाना पड़ेगा। वह मेरे सब कपड़े और सारा सामान लेकर अदालत पहुंचा था कि वहां से बेल हो जाएगी। न इनके पास अरेस्ट वारंट है, न कोई गिरफ्तारी का कारण है तो बेल देने से रोकने की तो कोई वजह ही नहीं है। खुद जेलर ने मुझसे कहा कि हम चकित हैं और हैरान हैं। हमने अपने जीवन में ऐसा मामला नहीं देखा। पहली तो बात यह है कि गिरफ्तारी गलत है। गिरफ्तारी बेवजह है। सरकारी वकील कोई कारण पेश नहीं कर सका और उसने स्वीकार भी कर लिया कि हमारे पास कोई कारण नहीं है। लेकिन सरकार का आग्रह है कि फिर भी इस व्यक्ति को बेल न दी जाए।
और जेलर ने मुझसे कहा कि बेल नहीं दी गई आपको, उसका कारण यह है कि मजिस्ट्रेट को कहा गया--एक औरत मजिस्ट्रेट थी--कि अगर मुझे बेल न दी जाए तो उसे फेडरल जज बना दिया जाएगा। और अगर मुझे बेल दी गई तो वह जिंदगी भर मजिस्ट्रेट ही रहेगी। कभी फेडरल जज नहीं हो सकती। और निश्चित ही सिर्फ तीन दिन के भीतर वह फेडरल जज हो गई। कानून को भी रिश्वत--वह भी सरकारें रिश्वत देती हैं।
और जिस जगह मुझे अरेस्ट किया गया नार्थ कैरोलिना में, वहां से ऑरेगॉन
छह घंटे के फासले पर है। हम अपने हवाई जहाज देने को तैयार थे कि आप हमारे हवाई जहाज में, आपके पायलट, आपके पुलिस आफिसर मुझे पोर्टलैंड पहुंचा दें, जहां कि फैसला होना है, लेकिन सरकारी हवाई जहाज में ही मुझे ले जाया जाएगा।

और आप जान कर हैरान होंगे कि सरकारी हवाई जहाज को छह घंटे की यात्रा करने में बारह दिन लगे। इसलिए सरकारी हवाई जहाज में ले जाना जरूरी था, क्योंकि सरकारी हवाई जहाज एक एअरपोर्ट से दूसरे एअरपोर्ट पर जाकर रुक जाता। एक जेल से मुझे दूसरी जेल में पहुंचा दिया जाता। बारह दिन में छह जेल--बिना किसी कारण के। वह ज्यादा नहीं कर सके, क्योंकि सारी दुनिया की नजरें इस बात पर लगी थीं। लेकिन फिर भी उन्होंने हर तरह की चेष्टा की कि मुझे नुकसान पहुंचा सकें। उन्हें मालूम था कि मेरी कमर में तकलीफ है, दर्द है और डाक्टर इलाज करने में असमर्थ रहे हैं। और सिवाय आपरेशन के उन्हें कुछ रास्ता नहीं दिखता और आपरेशन से भी ठीक होगा, इसकी भी गारंटी नहीं है। और आपरेशन के बाद मामला और भी बिगड़ सकता है, इसलिए आपरेशन करने की भी वे सलाह नहीं देते।
जिस रात मुझे गिरफ्तार किया, मुझे पूरी रात एक लोहे की बेंच पर बिठा रखा। हाथों में हथकड़ी, पैरों में बेड़ियां, कमर में जंजीर और मैं हाथ भी न हिला सकूं, इसलिए हाथ की जंजीर के साथ कमर की जंजीर में भी जंजीर। और जंजीर हर वक्त ठीक उस जगह बांधी गई हर जेल में, जहां मेरी कमर में तकलीफ है। और हर जगह मुझे ठीक उसी तरह की बेंच दी गई लोहे की, ताकि जितनी तकलीफ मेरी कमर को दे सकें...
एक जेलर दूसरे जेलर को मुझे सौंपता--मैं कार के भीतर बैठा हूं, वह कार
के बाहर दूसरे जेलर को कहता कान में कि कुछ भी करना सोच-समझ कर, क्योंकि व्यक्ति अंतर्राष्ट्रीय ख्याति का है और सारी दुनिया की नजरें लगी हैं। जरा सा भी कुछ गड़बड़ हुआ तो अमरीका के लोकतंत्र पर धब्बा लगेगा, इसलिए जो भी किया जाए वह अपरोक्ष होना चाहिए।
दूसरे नंबर की जेल में मुझसे कहा गया कि मैं एक झूठे नाम पर दस्तखत करूं, अपने नाम पर नहीं। मैंने कहाः यह कुछ थोड़ी अजीब सी बात है और वह भी एक कानून का अधिकारी मुझसे कह रहा है कि मैं एक झूठे नाम पर दस्तखत करूं-- डेविड वाशिंगटन! और मुझसे कहा जा रहा है कि मैं डेविड वाशिंगटन के नाम से ही पुकारा जाऊंगा।
मैंने इनकार किया कि मैं कोई गैर-कानूनी काम करने को तैयार नहीं हूं,
तो मुझे धमकी दी गई कि तो फिर रात भर यहीं, इसी लोहे की बेंच पर बैठे रहें। मैंने उनसे कहा कि आप पछताएंगे पीछे, क्योंकि कितनी देर यह सब चल सकता है, जिस दिन भी मैं जेल के बाहर होऊंगा, उस दिन सारी दुनिया यह सारी हरकत जानेगी और किस आधार पर आप चाहते हैं कि मैं डेविड वाशिंगटन का नाम अपना नाम बताऊं? यह तो कोई छोटी-मोटी बुद्धि का आदमी भी समझ सकता है कि इसका मतलब यह हुआ कि अगर आप मुझे मार भी डालें, तो पता भी नहीं चल सकता कि मैं कहां गया, क्योंकि आपकी फाइल में मेरा नाम भी नहीं है और कोई कल्पना भी नहीं कर सकता कि डेविड वाशिंगटन नाम का आदमी मैं था--किसी को पता भी कैसे होगा? इसलिए मैंने कहा कि अगर आपको उत्सुकता है तो आप डेविड वाशिंगटन नाम लिखें, फार्म भरें, दस्तखत मैं करूंगा। जेलर को भी जाना था, आधी रात तक, कब तक वह बैठा रहे, उसको भी परेशानी थी, क्योंकि मेरे साथ उसको भी बैठना पड़े। इसलिए उसने फार्म भरा, लेकिन उसको यह समझ में नहीं आया कि फार्म भर कर वह गलती कर रहा है--हैंड राइटिंग उसकी होगी और दस्तखत तो मैं अपने ही नाम के करूंगा। जब मैंने दस्तखत किए तो वह हैरान हुआ कि यह आपने क्या लिखा है! मैंने कहाः डेविड वाशिंगटन ही होगा। पर किस भाषा में? मैंने कहाः मैं अपनी भाषा में ही लिखूंगा। भाषा के संबंध में तो कोई बात तय न हुई थी।
और मैंने उससे कहाः कल सुबह टेलीविजन पर और सारे न्यूजपेपर्स में और रेडियो पर यह खबर होगी कि अब मेरा नाम डेविड वाशिंगटन हो गया है। उसने कहाः आप मुझे धमकी दे रहे हैं, यह कैसे हो सकता है? हम दो के सिवा यहां कोई भी नहीं है। मैंने कहाः कल सुबह आप देखना। क्योंकि मेरे साथ एक युवती, जो किसी अपराध में कैद थी, वह भी कार में जेल तक लाई गई थी। हवाई जहाज में उसने मेरे साथ यात्रा की थी। उसने मेरी किताबें पढ़ी होंगी, टेलीविजन पर मेरे व्याख्यान सुने होंगे। उसने कहा कि मैं आपकी कोई सेवा कर सकूं... तो मैंने उससे कहाः इतना ही खयाल करना कि जेल के भीतर जेलर से मेरी जो भी बातचीत हो-- क्योंकि वह कल सुबह मुक्त होने वाली है जेल से--तो मुक्त होते ही पहला काम

यह करना कि पत्रकार बाहर ही दरवाजे पर मिल जाएंगे, जो बात तू सुने, उनसे तू कह देना।
और उस लड़की ने ठीक-ठीक पूरा ब्योरा पत्रकारों को सुबह छह बजे दे दिया। सात बजे की न्यूज बुलेटिन पर सारे अमरीका में खबर हो गई। घबड़ाहट में उन्होंने मुझे उसी क्षण उस जेल से बाहर निकाला, क्योंकि तब उस जेल में रखना मुश्किल हो गया उन्हें।
हर जेल में उन्होंने किसी न किसी तरह से तरकीब की चोट पहुंचाने की। एक जेल में एक आदमी के साथ मुझे रहने को मजबूर किया, जिसके पास छह महीने से किसी को नहीं रखा गया था, क्योंकि वह आदमी मर रहा है संक्रामक बीमारी से-- हर्पीज से। और उसके पास किसी भी व्यक्ति का होना निश्चित रूप से बीमारी को पकड़ लेना है। और छह महीने से उस छोटे से कमरे में वह अकेला रह रहा है और छह महीने से दूसरे व्यक्ति को उस कमरे में नहीं रखा गया है। सिर्फ इसलिए कि कहीं दूसरे को बीमारी न पकड़ जाए। लेकिन डाक्टर मौजूद है, जेलर मौजूद है और न डाक्टर ने एतराज किया और न जेलर ने एतराज किया। मुझे उस कमरे में बंद किया, वह आदमी मरने के करीब है, वह आदमी दूसरे दिन मर गया।
उस आदमी ने मुझसे कहा कि मैं ज्यादा अंग्रेजी नहीं बोल सकता हूं (वह आदमी क्यूबा से था) मगर इतना मैं आपको कहना चाहता हूं कि मेरी सहानुभूति आपके साथ है। मैं तो मर रहा हूं लेकिन मैं नहीं चाहता कि आप इस बीमारी से मरें। और इन लोगों की सारी चेष्टा यह है कि यह बीमारी आपको पकड़ जाए, इसलिए आप दरवाजे से अंदर न आएं, दरवाजे पर ही खड़े रहें और दरवाजे को ठोकें, चाहे रात भर दरवाजा ठोंकना पड़े। आप कमरे के भीतर प्रवेश न करें, दरवाजे पर ही खड़े रहें, जब तक कि ये दरवाजा न खोलें।
एक घंटा मुझे दरवाजा ठोंकना पड़ा, तब जेलर आया, डाक्टर आया। मैंने उनसे पूछा कि छह महीने से जब इस कमरे में किसी को भी नहीं रखा गया, तो तुम्हें शर्म नहीं आती कि तुम मुझे इस कमरे में रख रहे हो जो कि अपराधी भी नहीं है। और कल तुम क्या जवाब दोगे अखबारों को, टेलीविजन को और दुनिया को। और यह आदमी कहीं तुमसे ज्यादा आदमी है। और तुम डाक्टर हो, तुम्हें आत्महत्या कर लेनी चाहिए, तुमने कसम खाई है डाक्टरी की कि तुम लोगों के जीवन को बचाओगे और तुम यहां चुपचाप खड़े रहे, तुम्हारी कसम का क्या हुआ?
तत्काल मुझे दूसरे कमरे में ले जाया गया, कोई जवाब नहीं है उनके पास, लेकिन परोक्ष रूप से मुझे किसी भी तरह चोट पहुंच जाए, किसी भी तरह परेशान किया जाए, किसी भी तरह हैरान किया जाए, इसकी बारह दिन सतत उन्होंने चेष्टा की। वे बेचारे कुछ कर न पाए, इसका मुझे अफसोस है।
मगर एक बात साफ हो गई कि लोकतंत्र के नाम पर दुनिया में कहीं भी लोकतंत्र नहीं है। मेरे मन में अमरीका के लोकतंत्र की इज्जत थी। लेकिन मैं यह जो देख कर लौटा हूं और जो अनुभव करके लौटा हूं, वह यह कि कोई लोकतंत्र कहीं भी नहीं है। और रोनाल्ड रीगन हिटलर नंबर एक--असली हिटलर बेचारा अब नंबर दो हो गया है।

प्रश्नः प्यारे ओशो, आपके नाम के साथ सेक्स गुरु, अमीरों के गुरु इत्यादि भ्रांतिपूर्ण विशेषण क्यों जुड़े हुए हैं? क्या आपको भ्रांतियों के घेरे में रखने के पीछे कोई साजिश है?

हर्षिदा! साजिश बड़ी है। कहना चाहिए अंतर्राष्ट्रीय है। झूठ को भी अगर बार-बार दोहराया जाए तो वह सच मालूम होने लगता है।
मेरे नाम से कम से कम चार सौ किताबें प्रकाशित हुई हैं। मैंने तो कोई किताब लिखी नहीं, जो बोलता हूं, वह किताब बन जाती है। उन चार सौ किताबों में एक किताब है, जिसका नाम हैः "संभोग से समाधि की ओर।" वे बंबई में दिए गए पांच व्याख्यान हैं। जो भी उस किताब को पढ़ेगा, वह यह समझ सकता है कि वह किताब सेक्स के ऊपर नहीं है, सेक्स को कैसे अतिक्रमण किया जाए, इसके संबंध में है। उसी किताब का अंग्रेजी में अनुवाद हुआ हैः "सेक्स टु सुपरकांशसनेस।" कैसे व्यक्ति कामवासना से, ध्यान के माध्यम से, आहिस्ता- आहिस्ता चेतना के ऊंचे से ऊंचे शिखरों को छू सकता है--यह उस किताब का मूल विषय है।

लेकिन किसी को न तो किताब पढ़नी है, न किसी को किताब में लिखी गई बात का प्रयोग करना है। बस लोगों की बुद्धि में एक शब्द डाल देना काफी है। चूंकि सेक्स शब्द का प्रयोग हुआ है, इसलिए अखबार वाले, राजनीतिज्ञ, धर्मगुरु, वे सारे लोग जिनके न्यस्त स्वार्थों पर मैं चोट कर रहा हूं और जिन्हें मेरी बातों का जवाब खोजे से नहीं मिलता, उन्होंने उस शब्द को ही पकड़ लिया है। और जब सारे धर्मगुरु, सारे राजनेता और सारे अखबार उनके हाथों में हैं--या तो धर्म नेताओं के हाथों में हैं या राजनेताओं के हाथों में हैं या धनपतियों के हाथों में हैं। सारी दुनिया में उन्होंने प्रचारित कर रखा है कि मैं सेक्स गुरु हूं।
सचाई यह है कि मेरे अतिरिक्त दुनिया में इस समय कोई भी सेक्स से कैसे पार जाया जाए, इस संबंध में शिक्षा देने वाला व्यक्ति मौजूद नहीं है।
और वही बात कि मैं धनियों का गुरु हूं। क्योंकि मैंने इस बात को बार-बार कहा है कि जिनके पास धन है, उनको ही दिखाई पड़ता है कि धन व्यर्थ है। धन की व्यर्थता जानने के लिए धन का होना जरूरी है।
जैनों के चौबीस तीर्थंकर, महाराजाओं के बेटे हैं। बुद्ध महाराजा के बेटे हैं। राम और कृष्ण सब महाराजाओं के बेटे हैं। तुमने कभी किसी भिखमंगे के बेटे को तीर्थंकर होते देखा? किसी भिखमंगे के बेटे को तुमने कभी अवतार होते देखा? भिखमंगे को फुरसत नहीं है। अभी धन को व्यर्थ कहे, इसके पहले कम से कम धन तो चाहिए, धन का अनुभव तो चाहिए।
तो चूंकि मैंने यह बात कही कि धर्म का ठीक-ठीक स्थापन, केवल समृद्ध देशों में हो सकता है। और भारत में भी तब धर्म का स्थापन था, जब भारत समृद्ध था।
आज क्या है?
गरीबी, भूख, बीमारी--रोटी मांगती है। भूखे आदमी के पास जाकर तुम कहो कि मैं तुम्हें ध्यान करना सिखाऊंगा तो तुम्हें खुद ही शर्म आएगी।
मैं चाहता हूं, यह देश समृद्ध हो। मैं चाहता हूं कि दुनिया में कोई भी गरीब न रहे, कोई भूखा न रहे। और क्यों चाहता हूं? इसलिए कि अगर सारी दुनिया में समृद्धि हो तो हम सारी दुनिया में अध्यात्म की प्यास को हजार गुना बढ़ा सकते हैं। हम उसे एक जंगल की आग की तरह फैला सकते हैं।
अब मेरी इस बात से अगर कोई यह मतलब निकाल ले कि मैं धनपतियों का गुरु हूं और उसके पास अगर साधन हों प्रचार के तो वह प्रचार कर सकता है। अब मेरी मुसीबत यह है कि मैं अकेला आदमी हूं और सारी दुनिया से अकेला लड़ रहा हूं। मेरे पास फुरसत भी नहीं है कि मैं उन सारे अखबारों को देख सकूं, जिनमें मेरे संबंध में खबरें छपती हैं। दुनिया की सारी भाषाओं में।
अभी परसों इजरायल के एक अखबार ने खबर छापी है कि अब मैं योजना बना रहा हूं इजरायल आने की। और इजरायल आकर मैं अपने आप को यहूदी धर्म में दीक्षित कर दूंगा। और एक बार यहूदी धर्म में दीक्षित हो जाने के बाद मैं घोषणा करूंगा कि मैं यहूदी धर्म के संस्थापक मूसा का अवतार हूं।
अब मैं इन लोगों के लिए क्या जवाब दूं? और जवाब देने का मतलब भी क्या है? और किस-किस को जवाब दूं? और दुनिया भर के अखबारों में क्या छपता है। सात वर्ष से तो मैं कुछ पढ़ता ही नहीं। मैंने पढ़ना ही छोड़ दिया, क्योंकि फिजूल की बातों को पढ़ने से क्या प्रयोजन है। सात वर्षों से न मैंने कोई किताब पढ़ी है, न कोई अखबार पढ़ा है, कोई बहुत जरूरी बात होती है तो मेरे संन्यासी मेरे तक पहुंचा देते हैं।
तो मेरे संबंध में जितने झूठ प्रचारित करने हों, बहुत आसान है, क्योंकि मुझे पता ही नहीं चलता कि मेरे संबंध में झूठ प्रचारित किए जा रहे हैं। और चूंकि मैं उनका खंडन नहीं करूंगा, लोग उन्हें मान ही लेंगे कि ठीक होंगे, नहीं तो मुझे खंडन करना चाहिए।
जनता कुछ भी संवेदनशील, सनसनीखेज बात चाहती है। अखबार उसे छापने को तैयार रहते हैं। उनके खिलाफ छापने में तो उन्हें घबड़ाहट होती है, जिनके हाथ में ताकत है। क्योंकि ताकत उनको परेशान करेगी। अगर कोई व्यक्ति राजनीति में किसी बड़े पद पर है तो उसके खिलाफ सच्ची बात को भी नहीं छापा जा सकता। मेरे हाथ में तो कोई ताकत नहीं है। मैं किसी को कोई नुकसान पहुंचा सकता नहीं। मेरे संबंध में जितनी झूठी बातें छापनी हों, छापी जा सकती हैं।

लेकिन झूठ में प्राण नहीं होते। और धीरे-धीरे सारी दुनिया में लोगों को एक बात समझ में आ गई है कि मेरे खिलाफ सुनिश्चित रूप से षड्यंत्र कोई चल रहा है।
अभी यहां एक सप्ताह पूर्व मेरे एक संन्यासी विमलकीर्ति की पत्नी मौजूद थी। विमलकीर्ति जर्मनी के अंतिम सम्राट का प्रपौत्र है। वह मेरा संन्यासी था, उसकी पत्नी भी मेरी संन्यासिनी है। वह संन्यासी की हालत में ही मृत्यु को उपलब्ध हुआ। उसके पिता, उसकी मां, उसके भाई, सब उसकी मृत्यु के समय यहां मौजूद थे। डाक्टरों ने पहले ही दिन से कह दिया था कि उसके जिंदा बचने की कोई उम्मीद नहीं है, क्योंकि उसके मस्तिष्क की नस फट गई है, और वह बीमारी आनुवांशिक है। उसके दादा की भी मृत्यु वैसे ही हुई थी। और अभी दो महीने पहले उसके काका की मृत्यु भी ठीक वैसे ही हुई। और उस नस के फट जाने के बाद वह बेहोश है, उसको कृत्रिम श्वास देकर हम लाश को जिंदा रख सकते हैं, मगर यह व्यर्थ की मेहनत है। और पांच दिन के बाद तो डाक्टरों ने बिल्कुल इनकार कर दिया कि फिजूल हमारा समय खराब करवाया जा रहा है। अब इस व्यक्ति के लौटने का कोई उपाय ही नहीं है। इसके मस्तिष्क का सब कुछ समाप्त हो गया है। पर मैंने उनसे प्रार्थना की कि कम से कम उसके मां-बाप को आ जाने दो। और मां-बाप के आ जाने के बाद उन लोगों ने उसकी कृत्रिम श्वास की जो नली थी, वह अलग कर ली और अलग करते ही वह मर गया। वह मर तो चुका था सात दिन पहले, सिर्फ, मां-बाप के लिए प्रतीक्षा कर रहे थे। यूरोप के किसी अखबार ने यह खबर छाप दी कि मैंने उसे मरवा डाला, कि मैंने डाक्टरों को कहा कि उसकी नली अलग कर लो। उसकी पत्नी मौजूद थी, उसकी बेटी मौजूद थी। जब नली अलग की गई, तब उसकी पत्नी और बेटी मौजूद थीं अस्पताल में।
लेकिन उसकी पत्नी अभी यहां थी, उसने मुझे कहा कि आप हैरान होंगे जान
कर यह बात कि ग्रीस की महारानी भारत के एक शंकराचार्य की शिष्या हैं। ग्रीस की महारानी का एक बेटा इग्लैंड का राजा हैः प्रिंस फिलिप, एलिजाबेथ का पति। एक लड़की विमलकीर्ति की मां जर्मनी के पदच्युत सम्राट की पत्नी है। दूसरी लड़की हालैंड की, तीसरी लड़की किसी और देश की। ये सारे राज परिवार अभी महारानी की मृत्यु के वक्त इकट्ठे हुए। तुरीया, विमलकीर्ति की पत्नी भी महारानी की मृत्यु पर इकट्ठी हुई। क्योंकि वह करीब-करीब यूरोप के सारे राज परिवारों में किसी न किसी तरह का संबंध--कोई लड़का, कोई लड़की कहीं ब्याहा हुआ है, किसी की लड़की उसके यहां है। ग्रीस की महारानी करीब-करीब सारे यूरोप के राज परिवारों के ऊपर अधिकार रखे हुए है। तुरीया ने मुझे बताया कि मरने के पहले उसने कहा कि कुछ भी हो, भगवान के हाथ से तुरीया और उसकी लड़की को निकालो, क्योंकि शंकराचार्य ने मुझे कहा है कि इससे ज्यादा खतरनाक व्यक्ति और दूसरा नहीं हो सकता। यह आदमी धर्म का दुश्मन है।
और एक बैठक हुई सारे यूरोप के राज परिवारों की, जो वहां मौजूद थे अंतिम संस्कार के लिए, जिसमें यह तय किया गया कि किसी भी तरह से मेरे आंदोलन को नष्ट किया जाए और किसी भी तरह से मुझे नष्ट किया जाए और एक व्यवस्थित योजना बनाई जाए। निश्चित ही ये सारे लोग या तो अब भी राज्य उनके हाथ में है, जैसे कि प्रिंस फिलिप... प्रिंस फिलिप के हाथ में पूरा का पूरा काम सौंपा गया कि वह षड्यंत्र कैसे रचा जाए, इसकी व्यवस्था करें। और जो लोग अब राज्य में नहीं हैं फिर भी उनकी सत्ता तो है, फिर भी राजनीतिज्ञों पर उनका दबाव तो है, फिर भी धनपतियों पर उनका प्रभाव तो है।
अगर यूरोप के सारे देशों की पार्लियामेंट मेरे खिलाफ यह कानून बना सकती हैं कि मैं उनके देश में प्रवेश नहीं कर सकता, तो निश्चित ही साजिश अंतर्राष्ट्रीय है और पीछे धर्मगुरुओं का हाथ है, राजनेताओं का हाथ है, धनपतियों का हाथ है। उनके पास ताकत है।
लेकिन एक बात मैं स्पष्ट बात कर देना चाहता हूं कि झूठ के पास चाहे कितनी ही ताकत हो, सत्य के समक्ष झूठ नपुंसक है। वे सारी साजिशें बेकार हो जाएंगी। जो मैं कह रहा हूं, अगर वह सच है और जो मैं कर रहा हूं, अगर वह अस्तित्व के अनुकूल है, जो मैं बोल रहा हूं, अगर वह सनातन धर्म है, तो सारे षड्यंत्र, सारी साजिशें मिट्टी में मिल जाएंगी, उनकी कोई कीमत नहीं है। इसलिए मैं उनके खंडन करने का और व्यर्थ अपना समय नष्ट करने की चेष्टा भी नहीं करता हूं। वे अपनी मौत मर जाने वाले झूठ हैं।

मैं तो उसका गुरु हूं जिसका हृदय प्रेम का धनी है। मैं तो उसका गुरु हूं जिसके प्राणों में ध्यान का धन है। मैं तो उसका गुरु हूं जिसके भीतर सत्य को, सत्य के धन को खोजने की प्यास जगी है। अगर धनियों का गुरु ही कहना है तो निश्चित ही मैं धनियों का गुरु हूं, लेकिन तब मेरे धन की परिभाषा तुम्हें समझ लेनी होगी। जिनके पास केवल सोने और चांदी के ठीकरे हैं, उनको मैं भिखमंगे कहता हूं। धनी तो वह है, जिसके हृदय में शांति है, आनंद है, उल्लास है, जिसके पैरों में नृत्य है, जिसकी श्वासों में बांसुरी है। जिसके भीतर परमात्मा ने थोड़ी सी झलक दिखा दी है। बस वही केवल धनी है और सब गरीब हैं।
लेकिन यह मेरा धंधा ही खराब धंधा है। सुकरात को जब जहर दिया गया तो उसने यही कहा कि इसमें कसूर जहर देने वालों का नहीं है, मेरा धंधा ही खराब है। यह सत्य बांटने का धंधा खतरनाक धंधा है। मीरा ने कहा हैः "जो मैं ऐसा जानती प्रेम किए दुख होय, जगत ढिंढोरा पीटती, प्रीत न करियो कोय।" परमात्मा से प्रेम किया तो झंझट शुरू हुई। अब मैं तो मुसीबत में फंसा हूं, तुमको भी फसाऊंगा। साथ ही तैरेंगे, साथ ही डूबेंगे।

प्रश्नः प्यारे ओशो, चालीस वर्षों की स्वतंत्रता के बावजूद यह देश समृद्धिशाली क्यों नहीं है, जब कि इतने समय में रूस, चीन, जापान इत्यादि देश विश्व शक्तियों में तबदील हो चुके हैं? क्या आपका जीवन-दर्शन भारत को समृद्ध बना सकता है? क्या आप रजनीशपुरम जैसा स्वर्ग समस्त भारत में उतार सकते हैं?

निश्चित ही। भारत के समृद्ध होने में कोई बाधा नहीं है; सिवाय भारत की प्राचीन धारणाओं के।
कुछ मौलिक बातें भारत के मस्तिष्क में उतर जाएं तो केवल दस वर्षों के भीतर भारत दुनिया की विश्व शक्ति बन सकता है।
पहली बात कि दरिद्रता में कोई अध्यात्म नहीं है। यह और बात है कि कोई समृद्ध व्यक्ति अपनी समृद्धि को लात मार कर भिखारी हो जाए, लेकिन उसके भिखारीपन में और एक साधारण भिखारी में जमीन-आसमान का अंतर है। उसका भिखारीपन समृद्धि के बाद की सीढ़ी है और साधारण भिखारी अभी समृद्धि तक ही नहीं पहुंचा, अभी समृद्धि के पार वाली सीढ़ी पर कैसे पहुंचेगा? भारत के मन में दरिद्रता के प्रति जो एक झूठा भाव पैदा हो गया है कि यह आध्यात्मिक है उसका कारण है; क्योंकि बुद्ध ने राज्य छोड़ दिया, महावीर ने राज्य छोड़ दिया। स्वाभाविक तर्क कहता है कि जब धन को छोड़ कर लोग चले गए, गरीब हो गए, नग्न हो गए, तो तुम तो बड़े सौभाग्यशाली हो, तुम नग्न ही हो, कहीं छोड़ कर जाने की जरूरत ही नहीं है। न राज्य छोड़ना है, न धन छोड़ना है। मगर तुम भूलते हो। बुद्ध के व्यक्तित्व में जो गरिमा दिखाई पड़ रही है, वह साम्राज्य को छोड़े बिना नहीं हो सकती थी। साम्राज्य का अनुभव एक विराट मुक्ति का अनुभव है, कि धन तुच्छ है, इससे कुछ पाया नहीं जा सकता।
लेकिन इससे पूरे भारत ने एक गलत नतीजा ले लिया कि गरीब ही बने रहने में सार है। क्या फायदा है? सम्राट गरीब हो रहे हैं तो तुम्हारे गरीबी को छोड़ने से क्या फायदा है?
भारत के मन से गरीबी का आदर मिटा देना जरूरी है।
भारत में जनसंख्या को तीस वर्षों तक बिल्कुल रोक देना जरूरी है।
पांच वर्षों तक रजनीशपुरम में एक भी बच्चा पैदा नहीं हुआ। कोई जोर-जबरदस्ती नहीं थी, कोई बंदूक लेकर नहीं खड़ा था पीछे। सिर्फ समझाने, समझ की बात है। हमारे पास जितनी जमीन है; जितनी चादर है, उससे ज्यादा पैर मत फैलाओ। नहीं तो या तो पैर उघड़ जाएंगे या सिर उघड़ जाएगा। कुछ न कुछ उघड़ जाएगा।
तीस वर्षों तक भारत की जनसंख्या न बढ़े।
भारत के विश्वविद्यालयों में, विद्यालयों में, स्कूलों में, उन विषयों पर जिनका आज जीवन को समृद्ध करने में कोई सहयोग नहीं है, जोर न दिया जाए, जैसे भूगोल, इतिहास। तकनीकी ज्ञान, साइंस और ध्यान, ये भारतीय शिक्षा के आधार बन जाएं। और इन दोनों के बीच संतुलन बना रहे कि जितना विज्ञान बढ़े,

उतना ही ध्यान बढ़े। विज्ञान बढ़ जाए और ध्यान न बढ़े तो खतरा है। क्योंकि तब ऐसा होगा, जैसे छोटे बच्चे के हाथ में नंगी तलवार आ गई।
भारत में इतने धर्म हैं, जिनमें रोज झगड़ा है। इस मूर्खता को छोड़ा जाए।
कम से कम भारत पहल करे दुनिया में कि धर्म एक है।
और उसका संबंध न हिंदू से है, न मुसलमान से है।
उसका संबंध तो भीतर की वीणा के तार गुंजाने से है। संन्यास के नाम से मैंने उसी एक धर्म को फैलाने की कोशिश की है ताकि जो शक्ति व्यर्थ लड़ने में लग जाती है वही शक्ति भारत में सृजन के काम में आ जाए।
भारत के चालीस वर्ष खराब हुए, उसके पीछे कारण हैं। पहला कारण तो यह है
कि महात्मा गांधी की जीवन-दृष्टि बहुत आदिम थी, विकासशील नहीं थी। चरखे पर रुक गई थी। चरखे को भुलाना पड़ेगा, दफनाना पड़ेगा, समादर सहित। गांधी को आदर दो, क्योंकि उन्होंने देश की आजादी के लिए अथक प्रयास किया। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि जो लोग देश की आजादी के लिए लड़ना जानते हैं, वे ही लोग देश का निर्माण करना भी जानते होंगे। ये दोनों अलग बातें हैं। देश की आजादी के लिए लड़ना एक बात है। यह एक सैनिक की बात है। एक योद्धा की बात है।
मेरे परिवार में सारे लोग जेल गए। मैं उन सबसे पूछता था, मुझे तुम यह बताओ कि तुम्हारी आजादी अंग्रेजों से आजादी है यह तो ठीक, लेकिन आजादी किसलिए? आजादी किससे, यह तो समझ में आता है। लेकिन किसलिए? तुम्हारे पास अगर आजादी आज आ जाए तो तुम क्या करोगे? देश के बड़े-बड़े नेताओं से, मैं तो छोटा था, जयप्रकाश से मैंने पूछा, कि अगर आज आजादी आ जाए तो क्या करोगे? तुम्हारे पास आजादी के बाद क्या करना है इसकी कोई योजना, कोई स्पष्ट धारणा नहीं है। और मुश्किल यही हो गई कि जो लोग आजादी का युद्ध लड़े उन्हीं के हाथ में आजादी की सत्ता गई। वे लड़ना तो जानते थे, मगर सृजन करना और निर्माण करना नहीं जानते थे। उससे उनका कोई नाता नहीं था। वह उन्होंने कभी सोचा नहीं था।
अब जरूरत है हमें कि हम उन लोगों के हाथ में सत्ता दें, जो देश में सृजन, नई जीवन-दृष्टि, नये आयाम खोलने की क्षमता रखते हों।
और उन लोगों की कमी नहीं है। हिंदुस्तान में वैज्ञानिक कोई पैदा होता
है तो उसे पश्चिम में नौकरी करनी पड़ती है, क्योंकि हिंदुस्तान में पहली तो बात उसके लिए प्रयोग करने के लिए कोई साधन नहीं है। कोई प्रयोगशाला नहीं है। ज्यादा से ज्यादा वह प्रोफेसर हो सकता है। सृजनात्मक कुछ भी उससे न हो सकेगा। और भारत को निर्माण करना हो तो हमें सृजन पर जोर देना चाहिए।
पांच हजार लोगों के कम्यून में वैज्ञानिक थे, सर्जन थे, डाक्टर थे, मनोवैज्ञानिक थे, मनोचिकित्सक थे, अणुविद थे। और मैं उन सबको भारत ला सकता हूं। मेरे संन्यासियों में कोई आदिवासी नहीं है। यह कोई ईसाई मिशनरियों का मामला नहीं है कि अनाथालय के बच्चे और आदिवासी! मेरे संन्यासियों में जगत के श्रेष्ठतम प्रतिभाशाली लोग हैं। मैं उन सबको भारत ला सकता हूं, पूरे दस लाख संन्यासियों को और यहां भारत में उनको पूरे सृजन में लगा सकता हूं।
लेकिन इस देश की सरकार मुझ पर रोक लगाना चाहती है कि कोई भी बाहर से संन्यासी हिंदुस्तान न आ सके। नासमझी की एक सीमा होती है। इनको पता होना चाहिए कि हम अपने बच्चों को पढ़ाते हैं, लिखाते हैं, उन पर खर्च करते हैं। उनको पश्चिम पढ़ने भेजते हैं और जब वे पढ़-लिख कर तैयार हो जाते हैं, तो पश्चिम उन्हें पी लेता है। सारा खर्च हमारा, प्रतिभा हमारी, लेकिन उसका अंतिम फल पश्चिम को मिलता है। अमेरिका जानता है कि किस तरह सारी दुनिया से प्रतिभाशाली लोगों को खींच लेना।
मेरे पास वह प्रतिभाशाली लोगों की जमात है।
लेकिन एक मूढ़ सरकार हमारी है, वह मेरे संन्यासियों को भारत आने से रोक रही है। कानूनन तो नहीं रोक सकती। तो पार्लियामेंट में तो मिनिस्टर कहते हैं कि हम संन्यासी नहीं रोकेंगे और एंबेसीज को खबरें दी जाती हैं कि संन्यासियों को आने मत देना। जगह-जगह से संन्यासी मुझे खबर भेज रहे हैं कि हम एंबेसी में जाते हैं और वहां से खबर मिलती है कि संन्यासी को भारत जाने की कोई जरूरत नहीं है!

मेरे एक मित्र ने अभी आस्ट्रेलिया से मुझे खबर की। सुन कर मुझे धक्का लगा कि भारतीय एंबेसेडर ने एक युवक को, इंजीनियर को कहा, जो कि संन्यासी है, कि तुम किसलिए भारत जाना चाहते हो? उसने कहाः मैं भारत ध्यान सीखने जाना चाहता हूं। तो भारतीय राजदूत ने कहाः कि भारत, ध्यान, योग इत्यादि सीखने जाने के लिए अब कोई जगह नहीं है। वे जमाने लद गए। अब इस तरह के लोगों को हम भारत नहीं जाने देंगे।
यह हमारे राजदूत हैं! कोई व्यक्ति ध्यान सीखने भारत आना चाहता है और हमारे राजदूत उससे कहते हैं कि वे जमाने लद गए, अब भारत कोई ध्यान सीखने नहीं जा सकता।
और मेरे लिए भारत सिवाय ध्यान सीखने के और किसी बात का प्रतीक नहीं है। यह ध्यान का विश्वविद्यालय है। और यह आज नहीं सदियों से ध्यान का विश्वविद्यालय है।
जो चालीस वर्ष हमने खोए हैं, वह दस वर्ष में हम वापस पा सकते हैं। लेकिन बस मजबूरी तो यह है कि उल्लू मर जाते हैं, औलाद छोड़ जाते हैं। और उल्लू ही ठीक थे, औलाद और भी उपद्रव है।

प्रश्नः प्यारे ओशो, भारतवासियों के लिए आपका कोई ऐसा संदेश है, जिसे
आप उन तक पहुंचाना चाहेंगे?

हर्षिदा! इतना ही कहना चाहता हूं भारत से कि तुम अपने असली चेहरे को पहचानो, तुम गौतम बुद्ध के देश हो। और तुम्हारे राजदूत कह रहे हैं कि ध्यान के लिए भारत जाने के लिए अब द्वार बंद हैं। तुम कृष्ण के देश हो। तुम पतंजलि के देश हो। तुमने उन सितारों को जन्म दिया है, जिनका कोई मुकाबला दुनिया में नहीं है। सारे आकाश के तारे तुम्हारे तारों के सामने फीके हैं। तुम जागो, ताकि दो कौड़ी के राजनीतिज्ञ तुम्हारा और तुम्हारी आने वाली पीढ़ियों का शोषण न कर सकें। ताकि अंधे लोग एक आंख वालों के देश का मार्गदर्शन न कर सकें। तुम जरा याददाश्तों से भरो। तुम जरा उन सारी सुगंधों को फिर से याद करो। उपनिषदों की गूंज, कबीर के गीत, मीरा के नृत्य, तुम अद्वितीय हो।
छोटे-मोटे लोग तुम्हारे ऊपर अधिकार किए बैठे हैं। इन्हें उतार फेंको। तुम्हारा देश अभी भी बुद्धिमानों से खाली नहीं है। लेकिन बुद्धिमान व्यक्ति चुनाव में भिखमंगों की तरह तुम्हारे पास वोट मांगने नहीं आएंगे। जो तुम्हारे पास वोट मांगने आए, उसे वोट मत देना। जिसे तुम वोट देने योग्य समझो, उसके पैर पड़ना, उसे समझाना-बुझाना कि तुम खड़े हो जाओ, हम तुम्हें वोट देना चाहते हैं। जो तुम्हारे पास भीख मांगने आता है, वह दो कौड़ी का है। जिसकी कोई कीमत है और जिसकी कोई आत्मा है और जिसका कोई स्वाभिमान है, वह तुमसे भीख मांगने नहीं आएगा। तुम्हें उससे जाकर प्रार्थना करनी होगी।
भारत को एक नये ढंग का लोकतंत्र दुनिया को देना होगा, जहां नेता भीख नहीं मांगता, जहां जनता बुद्धिमानों को, विचारशीलों को प्रार्थना करती है कि थोड़ा सा समय, थोड़ी सी बुद्धिमत्ता इस गरीब देश के लिए भी दे दो।